

हमारे पर्व



प्रकाशक :

बाबूलाल जैन पींचा

I D, उत्सव अपार्टमेंट्स

सुन्दरार स्ट्रीट, सेलम-636016 (तमिलनाडू)

फोन : 0427-2447663, मो. 9362107077

पुस्तक • हमारे पर्व

प्रकाशक : वावूलाल जैन (पीचा)

I D, उत्सव अपार्टमेन्ट्स

मुन्दगार स्ट्रीट, सेलम-636016 (तमिलनाडू)

फोन • 0427-2447663, मो. 9362107077

प्रतियां : 1000, जनवरी ~~2011~~

मुद्रक : अमित कम्प्यूटर्स एण्ड प्रिन्टर्स, वीकानेर

फोन : 0151-2547073, 09214555303

प्राक्कथन

उद्यान की ओर कदम बढ़ा, एक रस पिपासु का। भाति-भाति के छायादार वृक्ष, लताएँ, गुल्म, पर्ण कुटीर फुहार छोड़ते फव्वारे, भीनी-भीनी सुरभि लुटाता समीर मन आनंद से भर गया। सौन्दर्य सुषमा को निहारकर प्रमुदित होता पहुँच गया पुष्प वाटिका की ओर। मधुर-मधुर ध्वनि को सुन सहसा ठिठक गया। देखा, श्यामवर्णी मधुकर मंडरा रहा है। कभी किसी पुष्प पर, कभी किसी पुष्प पर। फूलों को न कुचला, न मसला, कुछ देर बैठा जरूर। मानो चुपके से कोई बात कहनी है, कहकर उड़ गया। पराग पीकर तृप्त हुआ भ्रमर उस माधुर्य को बिखरने लगा, अपने मधुर गुजन से। रस पिपासु के अर्न्तमानस में चिन्तन उभरा। सुरभित सुमनों का परिमल तसिदायक है, भ्रमर अपने आपको तृप्त कर लेता है।

जिनवाणी के प्रसूनो में इसी प्रकार आत्म तृप्ति दायक मकरन्द भरा पड़ा है। जिनवाणी उसे लुटा रही है, क्यों न मैं कुछ रस चख लू। स्वान्त सुखाय उसने रसपान किया और पीकर अपनी आनदानुभूति को लेखनी द्वारा गुजारित करने लगा। इच्छुक मानस उस आवाज के प्रति आकर्षित हुआ, विचार आया क्यों न इस ध्वनि को जन-जन तक पहुँचा दू। रस पिपासु का स्वर उभरा—“यह सब तो जिनवाणी के प्रसूनो का पराग है, प्राकृतिक तत्त्वों से उन्होंने अपने आपको परिमल से परिपूरित किया और परहितार्थ लुटाया है, पराग-प्रेमी भ्रमरों को मुग्ध करता है।

जिन-जिन पुस्तकों से जिनवाणी का पराग ग्रहण किया है, उन सबकी मैं ऋणी हूँ वे रस पिपासु हैं—प्रशातमना, तरुण तपस्वी, परमागम रहस्यज्ञाता, श्रीवाल प्रतिबोधक परमाराध्य 1008 श्री आचार्य श्री रामलालजी म.सा की आज्ञानुवर्तिनी शासन प्रभाविका परमविदुषी महाश्रमणी रत्ना श्रद्धेय 1005 श्री इन्द्रकंवर जी म सा ।

क्लात से क्लात मानस भी इसे पीकर आत्मोपलब्धि की गुजन मुखरित करेगा, इसी आशा एवं विश्वास के साथ प्रस्तुत है—

आत्म तृप्तिदायक जिनवाणी मकरन्द के रूप में

हमारे पर्व

—बाबूलाल पींचा, सेलम

श्रद्धानिष्ठ दिलेर व्यक्तित्व समाज-सेवी
सुश्रावक रत्न श्रीमान् बाबूलाल जी सा. पींचा
(एक परिचय)

हुक्मसंघ के लब्धप्रतिष्ठित नागौर-निवास श्रद्धानिष्ठ स्वनाम धन्य स्वर्गीय श्रीमान् पूनमचन्दजी सा. पींचा एवं दृढ धर्मानुरागी स्वर्गीया श्रीमती सुगनीदेवी के अगजात दिलेर व्यक्तित्व, मानवीय सदगुणों से विभूषित, शासन-समर्पित सुश्रावकरत्न श्रीमान् बाबूलाल जी सा पींचा धार्मिक-प्रवृत्तियों में अग्रणी ग्रेज्यूएट (**Graduate**) हैं।

आपकी धर्मपत्नी सौभाग्यवती सुश्राविकारत्ना सौ. किरणदेवी मिलनसारिता एवं व्यवहार कुशलता के सदगुणों से सम्पन्न, धार्मिक रुचि वाली हैं।

आपके पाँच ज्येष्ठ भ्राता हैं—1 स्व श्रीमान् नेमीचंद जी सा एव भाभीजी स्व. श्रीमती भँवरी देवी, 2. स्व. श्रीमान् जवरीमल जी सा एव भाभीजी श्रीमती मैना देवी, 3. श्रीमान् दुलीचंद जी सा. एव भाभीजी श्रीमती अनोपदेवी, 4. श्रीमान् भोपालचंद जी सा. एव भाभीजी श्रीमती सुन्दर देवी, 5 श्रीमान् अमरचन्द जी सा. एवं भाभीजी श्रीमती चन्द्रकला जी।

आपकी दो ज्येष्ठ बहिने हैं— सौ बिदामबाई-श्रीमान् भवरलालजी सा. दफ्तरी, सौ दाखाबाई-श्रीमान् जीतमलजी सा नाहर।

इन 7 भाई-बहिनों में आप सबसे छोटे एव उत्साही हैं।

आपके दो सुपुत्र हैं— श्री सुशीलकुमार जी-धर्मपत्नी सौ. जयश्री देवी एव श्री सुनीलकुमार जी-धर्मपत्नी सौ रचनादेवी। पौत्र-विनयकुमार, पौत्री-सुहानी। एक सुपुत्री हैं-सौ. सुलक्षणा जी-श्रीमान् रिखबचंद जी चौधरी।



इस प्रकार यह शिक्षित, ऐश्वर्य सम्पन्न भरा-पूरा परिवार नागौर की पुण्यधरा से पल्ववित पुष्पित हो वर्तमान मे मद्रास एव सेलम नगरो मे निवसित है।

इसी पींचा परिवार की कुलभूषण आपकी ससारपक्षीय भतीजी नानेश-शासन मे दीक्षित तपस्विनी, मधुर वर्चस्विनी विदुषी रत्ना श्री सिद्धप्रभा जी म सा जो अपनी प्रव्रज्या पथ के 25 बसत पूर्ण कर 26वे बसंत मे वर्तमान हुकमगच्छाधिपति ब्रह्मतेजस्वी तरुण तपस्वी शास्त्रज्ञ प्रशातमना आचार्यप्रवर श्री रामलालजी म सा. की आज्ञानुवर्तिनी शासन प्रभाविका परमविदुषी महाश्रमणीरत्ना श्री इन्द्रकवरजी म सा के सान्निध्य मे आगमरत्नाकर की परीक्षा सर्वोच्च अको से प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कर गुरु-इगितो पर पूर्ण-रूपेण समर्पित, जिनशासन की प्रभावना कर रही है। यह सम्पूर्ण पींचा परिवार हुकमसघ के नवम्-पट्टधर व्यसन मुक्ति अभियान प्रणेता, परमागमरहस्य विज्ञाता, श्रीवालप्रतिबोधक आचार्य श्री रामेश के प्रति पूर्ण समर्पित होकर गुरुनिष्ठा के साथ संघ एवं समाज की सेवा मे सदा अग्रणी है।

स्वनामधन्य स्वर्गीय पिता श्री पूनमचंद जी सा एव स्वर्गीया मातुश्री श्रीमती सुगनीदेवी पींचा की पुण्य-स्मृति मे भव्यजनो के कर कमलों मे संकलित-प्रवचन "हमारे पर्व" पुस्तक प्रस्तुत करते हुए अतीव हर्षित है।

शासन निष्ठ यह सम्पूर्ण पींचा परिवार संघ, समाज एवं शासन सेवा मे निरन्तर आगे बढता रहे। इन्हीं मंगल भावनाओ के साथ।

- अमिताभ नागोरी

बीकानेर



अनुक्रमणिका

जीवन की तस्वीर बदलिए : चातुर्मास	7
रक्षाबंधन	20
जन्माष्टमी	34
स्वतन्त्रता दिवस	47
अलौकिक महापर्व—“पर्युषण”	55
आत्म शुद्धि का महापर्व संवत्सरी	68
क्षमा-पर्व	80
विजयादशमी	91
प्रकाश-पर्व —दीपमालिका	97
दीपों का त्यौहार—इतिहास के परिप्रेक्ष्य में	112
स्वप्न-विज्ञान	121
भाई-दूज	137
ज्ञान-पंचमी	146
धर्मवीर क्रांतिकारी लोकाशाह	158
मौन एकादशी की महिमा	165
पुरुषादानीय भगवान पार्श्वनाथ	178
चिदानन्द खेले होरी	196
महावीर बनने की दिशा में प्रस्थान की प्रेरणा (महावीर जयंति)	207
अक्षय-तृतीया	217





जीवन की तरस्वीर बदलिए : चातुर्मास

चातुर्मास आत्म-उल्लास का अवसर है। यह उल्लास सिर्फ श्रद्धालुजनों के मनो का ही नहीं है, चातुर्मास तो समस्त जीव जगत, पशु-पक्षी, वनस्पति आदि सबको हर्षोल्लास से भर देता है तो फिर मनुष्य और मनुष्यो में भी आत्मोन्नति की लगन जिनको लग गई है, उन आत्म-साधको के प्रसन्नता की तो बात ही क्या है ? यह किसानो का अन्नदाता, जन-जीवन का त्राता और स्रष्टा चातुर्मास न हो तो जीवन रीता ही बना रहेगा।

मनुष्य श्रम करता है, किन्तु उसका फल पाने के लिए काल की उपयुक्तता एवं अनुकूलता जरूरी है। जैसे स्वास्थ्य सुधारने के लिए सर्दी का मौसम अनुकूल माना जाता है, वैसे ही धर्मसाधना के लिए और तपःसाधना के लिए वर्षावास चातुर्मास का समय सबसे अधिक अनुकूल माना जाता है। सम्पूर्ण सृष्टि के लिए वर्षाकाल सबसे महत्त्वपूर्ण है। इन महिनो में आकाश से जलधारा बरसकर धरती की प्यास बुझाती है, धरती की तपन मिटाती है और भूमि की माटी को नरम, कोमल, मुलायम बनाकर बीजो को अंकुरित करने के लिए अनुकूल बनाती है। इसलिए 27 नक्षत्रो में वर्षाकाल के 10 नक्षत्र और 12 महिनो में चातुर्मास के 4 मास ऋतु चक्र की धुरी है। सृष्टि के लिए जीवनदायी है। प्राणीजगत के लिए प्राणसंवर्धक और जीवन रक्षक माने जाते हैं।

सर्वप्रथम वर्षावास और चातुर्मास इन दो शब्दो पर हम विचार करे। वर्षावास अर्थात् वर्षाऋतु, श्रावण और भाद्रपद का महिना, इस वर्षाऋतु में एक स्थान पर रहना। जैनागम में इसे "वासावास" कहा गया है। वर्षाऋतु के केवल दो महिना ही है। शरद ऋतु-आसोज और कार्तिक मास, ये चारो मास मिलकर 'चातुर्मास' काल कहलाता है।



वैदिक व बौद्ध परम्परा में भी इस चार मास के काल को चातुर्मास कहा गया है। इस चातुर्मास हेतु परिव्राजक, ऋषि, श्रमण, निर्ग्रन्थ एक स्थान पर निवास करते हैं। वैदिक संत-महात्मा आज भी वर्षाकाल में चातुर्मास करते हैं, भले ही वे चार महिने के बजाय दो महिने ही एक स्थान पर ठहरते हैं। श्रावण भाद्रपद तक एक स्थान पर रुकते हैं। जनता को धर्मारोधना, भागवत श्रवण, रामायण पाठ, व्रत-उपवास आदि की प्रेरणा देते हैं।

बौद्ध भिक्षुओ में भी किसी समय चातुर्मास के चार महिने एक स्थान पर ठहरने की परम्परा थी। परन्तु अब वे भी दो मास में ही चातुर्मास समाप्त कर देते हैं।

जैन परम्परा में आज भी चातुर्मास की यह पवित्र परम्परा अक्षुण्ण चल रही है। आषाढी पूनम से कार्तिक पूर्णिमा पर्यन्त जैन निर्ग्रन्थ श्रमण एक स्थान पर ही ठहरते हैं। जैनशासन में चातुर्मास का बहुत अधिक महत्त्व है। वहाँ चातुर्मास का अर्थ आत्म-घर में प्रवेश करने के शुभ क्षण। चातुर्मास यानि जीवन-परिवर्तन का शुभ मौका, प्रत्येक दृष्टि से आनन्द प्रफुल्लता और उत्साह का सिंचन करने वाली शुभ घडियाँ, धर्म का बीजारोपण करने की ऋतु। तीर्थकर भगवन्तो ने जैन मुनियों के लिए विहार की आचार संहिता का आयोजन किया है। मुनियों को नवकल्पी एवं महासतियों को पांच कल्पी विहार करने की मर्यादा बताई है। अपनी-अपनी मर्यादानुरूप जहाँ आठ महिने साधु-साध्वी सरिता की तरह ग्रामानुग्राम पहुँचते हुए धर्माभूत प्रवाहित करते हैं वहाँ चार माह एक स्थान पर सरोवर की तरह स्थिर रहकर धर्मबोध का अमृत प्रदान करते हैं। आठ महिने सरिता की तरह गतिमान रहने वाले जैन श्रमण चार माह के लिए सरोवर की तरह तीर्थ हो जाते हैं। स्व-पर कल्याण की साधना उनकी बारह ही मास तक निरन्तर चलती रहती है। चातुर्मास कल्प के इन चार माह में संतो को एक स्थान पर रहने की भगवान ने आज्ञा दी है, कारण चातुर्मास में वर्षा के कारण वनस्पति तथा छोटे-मोटे अनेक प्रकार जीवों की उत्पत्ति होती है। संत-सतियों यदि ऐसे समय में विचरण करे तो वनस्पतिकायिक एवं छोटे-बड़े अनेक प्रकार के जीवों की हिंसा होना स्वाभाविक है। जैनधर्म अहिंसा प्रधान धर्म है। अतः चातुर्मास में



एक स्थान पर रहने की प्रभु की आज्ञा के पीछे “जीओ और जीने दो” की परम पवित्र अहिंसा की सद्भावना संलग्न है।

वैदिक ग्रन्थों में वशिष्ठ ऋषि का एक कथन है कि चातुर्मास के इन महिनो में विष्णु भगवान् समुद्र में जाकर शयन करते हैं, इसलिए यह चार मास का काल धर्माराधना योग-साधना, ध्यान, धर्मश्रवण, भागवत-पाठ व जप-तप में बिताना चाहिये। यात्रा नहीं करनी चाहिए। इन चार महिनो में विवाह-शादी, गृह-निर्माण आदि कार्य नहीं करने चाहिए। एक समय भोजन करना, रात्रि भोजन नहीं करना चाहिए। यहाँ तक भी कहा जाता है कि चार माह तक सभी देवता शयन करने रहते हैं। चार मास तक देवता के सोने का मतलब है, ये चार मास धर्माराधना और योगसाधना में ही बिताना चाहिए।

वैदिक ग्रंथों के इस कथन पर विचार करें तो यह स्पष्ट होगा कि देवता सोने का अर्थ है—हमारी प्रवृत्तियाँ, हमारी क्रियाएँ सीमित हो जाएँ। हमारा पराक्रम पुरुषार्थ जो बर्हिमुखी था, वह चार माह के लिए अन्तर्मुखी बन जाए। सोना-निवृत्ति का सूचक है और जागना प्रवृत्ति का सूचक है। इन चार माह में हमारा जीवन प्रवृत्तियों से हट निवृत्ति प्रधान बने। बाहर से हम सोये रहे और भीतर से जागते रहे। चेतना बाहरी संसार से हटकर अन्तर्मुखी धर्ममयी बन जाय।

चातुर्मास में इन बाह्यमुखी वृत्तियों को सुलाने का संकेत ही इस कथन से मिलता है कि चार मास देवता सोते हैं। इसलिए तुम कोई बुरा कार्य करोगे तो वे तुम्हारी रक्षा हेतु नहीं आयेगे। अतः आप असद्वृत्तियों से बचिये, जागते रहिए। शास्त्र में कहा है—“वसासु पडिसंलीणा” वर्षा ऋतु में प्रतिसंलीन बनकर रहो अर्थात् अपनी इन्द्रियों को बाह्य प्रवृत्तियों से सकुचित करके अंतर्मुखी रहो।

भगवान् महावीर चार महिने एक निर्जन स्थान पर जाकर तप धारण कर ध्यान में लीन हो जाते थे अर्थात् बाहरी दृष्टि से सो जाते थे, भीतर में पूर्णरूपेण जागृत रहते थे। तो इस प्रकार चातुर्मास में यह देवशयन का रूपक हमें बर्हिमुखी वृत्तियों से हटकर अन्तर्मुखी बनने का संदेश देता है। अन्तर जागरण का आह्वान करता है। चार महिने जागते रहो और जीवन को धर्ममय बनाओ।

वाला है, जो व्यवस्था करनी हो, वह कर ले। चौकीदार पहरेदार रखना हो तो रख ले। सैनिकों की टोली मेरे स्वागत के लिए भेजनी हो तो भेज दे। किले पर गोलियों से भरी बन्दूके लेकर सैनिकों को खडे रखना हो तो रखले, लेकिन मैं आकर अवन्ती को लुटे बिना वापस जाने वाला नहीं हूँ।”

बनिया तो शीघ्र ही उससे छुटकारा पाना चाहता था, अतः बोला— “ठीक है।” और आगे बढ़ गया। जब तक चोर दिखता रहा तब तक तो धीरे चला और जैसे ही चोर दिखना बंद हुआ कि ऐसी तेज दौड़ लगाई कि सीधा घर पहुँच कर ही सांस ली। कुछ आश्वस्त होने के बाद चोर द्वारा भेजा गया संदेश विक्रम राजा को दिया।

विक्रम राजा को आश्चर्य हुआ कि “यह कैसा बहादुर है जो पहले सदेश कहलवाता है और फिर चोरी करने जाता है ? इसे क्या कहे चोर या साहूकार ? हो सकता है वह चोरी करने नहीं आ रहा होगा परन्तु मेरी बुद्धि की परीक्षा करने आ रहा होगा।”

विक्रम राजा भी कम बुद्धिमान नहीं थे। उन्होंने दूसरे दिन राज्य में एलान करवाया कि आप सभी अपने घर के द्वार खुले रखकर सो जाइएगा। कोई भी अपनी अलमारी के ताला नहीं लगायेगा। सभी अपने माल-सामान की सूची बना लेना। यदि किसी के घर चोरी हो जाएगी, तो उसके चुराये गये सामान की पूर्ति राज-भंडार से हो जायेगी। आज किसी को पहरा देने की आवश्यकता नहीं है। विक्रम राजा स्वयं आज रात को पहरा देगे।

शुक्रवार का दिन, यह एलान श्रवण कर सारी प्रजा अपने घर के द्वार खुले रखकर निश्चिंत होकर सो गयी। पहरेदार भी सभी सो रहे हैं। राजा विक्रम चोर का स्वागत कर, दुपट्टा बाधकर, कमर पर तलवार लटकाकर शुक्रवार की रात को अपने राज्य में पहरा देने के लिए घूमने लगे। विक्रम राजा किले के इर्द-गिर्द घूम रहे हैं, सोच रहे हैं कि चोर आयेगा तो कहाँ से आयेगा ? घुमते-घुमते किले की एक ओर की दीवार टूटी हुई देखी। चोर यहीं से आ सकता है, ऐसा विचारकर चोर की राह देखते हुए राजा विक्रम वहीं पर खडे हो गये। राजा का विचार सही साबित हुआ। ठीक साढ़े बारह बजे वहाँ रूपा चोर आया और किले पर चढा। किनार टूटी हुई थी इसलिए

गया, वहाँ पिटारे पर एक कटोरी रखी हुई थी, उसमे सफेद-सफेद टुकडे थे। चोर ने सोचा—यह तो मिश्री है। मिश्री तो शकुनरूप है। मिश्री समझकर एक टुकडा उठाया और मुँह मे डाला तो पता चला कि मिश्री के बजाय नमक था। चोर वापस बाहर आ गया। विक्रम ने पूछा—“क्यो भाई ! तुम वापस क्यो आ गये ?” चोर ने कहा—“भाई ! मै जिस कमरे मे गया, वहाँ एक कटोरी पडी थी। उसमे से मैने मिश्री समझकर जिसे खाया, वह नमक निकल गया। जिसका नमक मेरे पेट मे पडा है, उसके घर मे मै चोरी कैसे कर सकता हूँ ? राजा यह सुनकर और अधिक आश्चर्यचकित हो उठा कि—“अरे यह कोई मानव है या देव है ? आज के प्राणियों की तो यह हालत है कि जिसकी खाते है उसी का खराबा करते है।”

विक्रम राजा ने कहा—“भाई ! प्रधान और सेठ के घर से तुम वापस आ गये, रात भी बहुत हो गई है। अब अपन सीधा राजा विक्रम के महल मे चोरी करेगे। चलो उनके महल मे मै भी साथ चलता हूँ।” दोनो साथ मे महल में गये। सात मजिल का भव्य महल, पर एक भी चौकीदार नहीं। एक-एक करके सातवीं मजिल पर पहुँचे। वहाँ का दृश्य तो ऐसा था, मानो स्वर्ग ही हो। स्वर्णमय पाये वाले पलंग पर विक्रम राजा की रानी आराम से सो रही थी। विक्रम ने कहा—यहाँ क्या चोरी करेगे। चोर की बुद्धि की परीक्षा के लिए कहा—“देखो, रानी जी सो रहे है, चोरी का अच्छा मौका है। पलंग के चारो पाये सोने के है, उन्हे निकाल कर ले जाय, परन्तु रानी जाग न जाय और नीचे नहीं गिरे। इस प्रकार उसके पाये निकाल दो तो मै तुम्हे सच्चा चोर मानूगा।” रूपा ने कहा—“इसमे कौनसी बडी बात है ? यह तो मेरे बांये हाथ का खेल है।”

चोर ने आस-पास नजर दौडाई तो एक गद्वियो का ढेर लगा हुआ था। चोर उसमे से एक-एक गद्दा लेकर पलंग के नीचे रखने लगा। उसने पलंग के नीचे गद्वे इस ढंग से रखे कि ठीक पलंग की रस्सी को छू गये। राजा पास खडा होकर देख रहा था कि चोर क्या करता है। कुछ क्षण बाद चोर ने छूरी से आस-पास की रस्सी संभालकर काट डाली, रस्सी के कटते ही रानी तुरन्त गद्वे पर आ गई। रानी को किंचित मात्र भी परेशानी नहीं हुई। वह



उसमे से धूल गिरने लगी। राजा समझ गये कि—“यही रूपा चोर है।” चोर चंदनगोह रखकर धीरे-धीरे उतरने लगा। आधे तक उतरा होगा कि उसने देखा कि नीचे कोई मनुष्य खड़ा है। अतः वापस चढ़ने लगा। उस समय विक्रम राजा ने अपनी बुद्धि से चोर लोग चोर को बुलाते हैं उस ढग से आवाज दी। चोर को लगा कि—“यह मेरे जैसा कोई ओर चोर चोरी करने आया लगता है। अच्छा हुआ, एक से भले दो हो गये। चोर नीचे उतरा।

विक्रमराजा का पहनावा, बोलचाल सब चोर जैसी थी, अतः चोर पहचान नहीं सका। विक्रम राजा चोर के साथ चोर की तरह मिल गये। दोनों ने साथ में प्रवेश किया। नगर के लोग राजा के हुक्म से घर के द्वार खुले रखकर सोये थे। चलते हुए मार्ग में सबसे पहले प्रधान का महल आया। विक्रम ने कहा—आज हम प्रधान के घर में चोरी करेंगे। प्रधान के घर के द्वार खुले थे, चौकीदार आराम से सोये हुए थे। विक्रम ने कहा—“मैं बाहर पहरा दूंगा। तुम अन्दर जाकर जितना माल हडप सको, हडप लेना, मैं यहाँ खड़ा हूँ, तुम्हारा कोई बाल भी बाका नहीं कर सकता।” चोर अन्दर गया पर थोड़ी सी देर में पुनः बाहर आ गया। विक्रम ने कहा—तुम वापस इतने जल्दी कैसे आ गये ? चोर ने कहा—भाई ! मैं प्रधान के भवन में गया, वहाँ प्रधान की पत्नी सो रही थी। मेरे पांव की आहट से उसकी नींद खुल गई और कहने लगी—कौन हो भाई ? उसने मुझे भाई कहा तो उस नाते वह मेरी बहिन हो गई। फिर भाई अपनी बहिन के घर में चोरी करेगा क्या ? उलटा मैं तो उसके तकिये के नीचे एक स्वर्ण मुद्रा रखकर आया हूँ। अब आगे चलिए। राजा विचार करने लगा कि—“अरे यह चोर है या साहूकार ? नादान है या खानदान ? आज के जमाने में तो सगे भाई भी बहन को लूटने में नहीं हिचकिचाते। तो यह सिर्फ “भाई” शब्द के संबोधन मात्र से चोरी न कर खाली हाथ लौट आया।” आगे बढ़े। चलते-चलते नगर सेठ की हवेली पर पहुँचे। वहाँ भी न कोई चौकीदार न कोई पहरेदार। खिडकी द्वार खुले पड़े हैं। विक्रम ने कहा मैं बाहर खड़ा हूँ, तुम अन्दर जाओ और लूट सको, उतना लूट लो। देखना खाली हाथ मत आना। चोर अन्दर गया। घना अन्धकार था, जितनी चोरी करना चाहे उतनी चोरी की जा सकती थी। चोर कमरे में

“महाराज ! आपका कथन पूर्ण सत्य है। मैंने एक सम्पन्न खानदानी कुल मे जन्म लिया है। सेठ का पुत्र हूँ। मेरे माता-पिता का बचपन मे ही निधन हो गया था। अमलदार (मुनीम) ने सारी पूजी लेकर मुझे भिखारी बना दिया और घर से निकाल दिया। बुरे मित्रो की संगत मे मै भी चोरी करना सीख गया। आज मै नामी चोर बन गया। यह पाप मुझे बहुत व्यथित करता है, इसलिए मैंने अपनी रोजगारी हेतु महीने मे एक बार चोरी करने की छूट रखकर दूसरी प्रतिज्ञा की है। चोरी करने पर भी मै कभी असत्य नहीं बोलता हूँ।”

“भाई ! क्या तुम उस अमलदार को जानते हो ?” चोर ने उसकी जानकारी दी। राजा ने उससे पूछताछ की। फिर बडी सजा की धमकी दी तो उसने सारी सच्चाई बता दी। तब चोर की सारी सपत्ति पुन उसे दिला दी। चोर पुन सेठ बन गया। आजीवन चोरी करने का त्याग कर लिया।

राजा को उसके प्रति बहुत आदर भाव जागृत हुआ कि चोर होने पर भी कितना इज्जतदार एव प्रामाणिक है। विवशतावश बुरी संगति से यह धधा अपनाना पडा, परन्तु इसकी नीति कितनी शुद्ध है। यह हृदय से चोर नहीं साहूकार है।

राजा ने कहा—“आज से तुम मेरे राज्य के प्रधान हो। तुम्हारे जैसा सत्यवादी और प्रामाणिक प्रधान को प्राप्त कर मुझे अतीव प्रसन्नता है।”

देखिए—चोर होने पर भी उसके पास कितनी साहूकारी थी। महाराज की कृपा प्राप्त कर चोरी का धन्धा छोड दिया और प्रधान पद को प्राप्त कर लिया। उसने अपने जीवन की तस्वीर बदल डाली।

यह चातुर्मासिक पर्व हमे यही सदेश दे रहा है—चार माह तक वीतराग वाणी अमृतपान करते हुए आप अपने जीवन की तस्वीर ऐसी बदल डाले कि फिर देह की तस्वीर बार-बार बदलनी नहीं पडे।



रक्षाबंधन

रक्षाबंधन भाई-बहिन के प्रेम संवर्धन का त्यौहार है। आज के दिन भाई को बहिन का और बहिन को भाई का अभाव अखरता है, पर यदि "वसुधैवकुटुम्बकम्" की भावना रखे तो सब भाई और बहिन माता और पिता हैं।

रक्षाबंधन सिर्फ धागे का बंधन नहीं है, किन्तु धागे के माध्यम से पारस्परिक स्नेह का बंधन है, आत्मा का बंधन है। रक्षा + बंधन अर्थात् विपदाओं से रक्षा हेतु दो आत्माओं का बंधन।

दुनिया में जितने भी पर्व मनाये जाते हैं, उनके दो रूप होते हैं— आध्यात्मिक और सामाजिक।

आध्यात्मिक रूप आत्मा से संबंधित होता है और आत्मिक उन्नति की प्रेरणा देता है।

सामाजिक रूप उसका बाह्य रूप होता है, उसका प्रारंभ किसी घटना से संबंधित होता है और धीरे-धीरे वह परम्परा अनुमोदित हो जाता है। परम्परा अनुसार चलते-चलते उसमें नई-नई बातें जुड़ती जाती हैं। उसका आयाम विस्तृत हो जाता है, वह फैलता जाता है और फिर त्यौहार का रूप ले लेता है। यह त्यौहार देश की संस्कृति से अनुप्राणित होता है।

आजकल रक्षाबंधन का सामाजिक रूप यह है कि बहिन अपने भाई को राखी बांधती है और भाई राखी बांधवाकर यथाशक्य गहना, कपड़ा और रुपया आदि देकर अपने कर्तव्यों की इतिश्री समझ लेते हैं और बहिनें भी कुछ पाने की इच्छा से राखी बांधती है। वे कहती भी हैं—"भैया जल्दी आना, चूंडा चूंडी लेते आना।" इसी प्रकार ब्राह्मण भी वैश्यों और क्षत्रियों को रक्षा सूत्र बांधते हैं और पुरस्कार स्वरूप दक्षिणा पाते हैं, किन्तु इस पर्व का यही



रक्षाबंधन

रक्षाबंधन भाई-बहिन के प्रेम संवर्धन का त्यौहार है। आज के दिन भाई को बहिन का और बहिन को भाई का अभाव अखरता है, पर यदि "वसुधैवकुटुम्बकम्" की भावना रखें तो सब भाई और बहिन माता और पिता हैं।

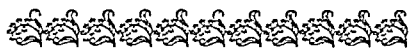
रक्षाबंधन सिर्फ धागे का बंधन नहीं है, किन्तु धागे के माध्यम से पारस्परिक स्नेह का बंधन है, आत्मा का बंधन है। रक्षा + बंधन अर्थात् विपदाओ से रक्षा हेतु दो आत्माओ का बंधन।

दुनिया में जितने भी पर्व मनाये जाते हैं, उनके दो रूप होते हैं— आध्यात्मिक और सामाजिक।

आध्यात्मिक रूप आत्मा से संबंधित होता है और आत्मिक उन्नति की प्रेरणा देता है।

सामाजिक रूप उसका बाह्य रूप होता है, उसका प्रारंभ किसी घटना से संबंधित होता है और धीरे-धीरे वह परम्परा अनुमोदित हो जाता है। परम्परा अनुसार चलते-चलते उसमें नई-नई बातें जुड़ती जाती हैं। उसका आयाम विस्तृत हो जाता है, वह फैलता जाता है और फिर त्यौहार का रूप ले लेता है। यह त्यौहार देश की संस्कृति से अनुप्राणित होता है।

आजकल रक्षाबंधन का सामाजिक रूप यह है कि बहिन अपने भाई को राखी बांधती है और भाई राखी बंधवाकर यथाशक्य गहना, कपड़ा और रुपया आदि देकर अपने कर्तव्यो की इतिश्री समझ लेते हैं और बहिने भी कुछ पाने की इच्छा से राखी बांधती है। वे कहती भी हैं— "भैया जल्दी आना, चून्डा चून्डी लेते आना।" इसी प्रकार ब्राह्मण भी वैश्यों और क्षत्रियो को रक्षा सूत्र बांधते हैं और पुरस्कार स्वरूप दक्षिणा पाते हैं, किन्तु इस पर्व का यही



मां ने दु ख के दिन देखे थे, समय ने उसे कष्ट सहिष्णु बना दिया, बेटे ने खर्चा देना बंद कर दिया। पुन वह घर-घर जाकर काम करती है। अपना एव पुत्री का पेट पाल रही है। इधर रमेश के घर उसकी सासू ने अपना डेरा जमा दिया। सासू ही अब उसकी मा बन गई। कुछ समय बाद प्रेमिला के पुत्र हुआ। पुत्र जन्म की खुशी पर रमेश ने पेडे बंटवाये। माता के यहां भी भिजवाये। मा की बिल्कुल इच्छा न होने पर भी यह सोचकर कि उस बच्चे का क्या दोष है ? उसने पेडे रख लिये। रमेश का पुत्र बहुत कमजोर था। बड़ी उम्र की औरते उस बच्चे को देखने के लिए आई तो प्रेमिला की मा ने पूछा—बच्चा कैसे मजबूत बनेगा ? उस समय रमेश भी वहीं था। आने वाली औरतो का रमेश की मां से अच्छा स्नेह सबध था, रमेश की मा का दु ख उन औरतो से देखा नहीं जाता था। वे कहने लगी—बच्चा बहुत कमजोर है, बच्चे का बाप भी तो बचपन मे बहुत कमजोर था। इसकी मा ने तो इसे रूई मे सभाल-संभाल कर बड़ा किया। उसे अच्छा करने के लिए यानी उसका स्वास्थ्य सुधारने के लिए जगह-जगह लेकर फिरती रही। इसकी मां ने तो इतना लाड रखा कि बाप गुजर गया, पास मे कुछ नहीं था, फिर भी इसे जरा भी परेशानी महसूस नहीं होने दी। खुद भूखी रह जाती लेकिन अपने दोनो बच्चों को फूल जैसे रखा। रमेश भी यह सारी बातें सुन रहा था, उसके हृदय मे चोट लगी। उसे अपना अतीत याद हो आया—“अहो ! मैं कैसा अधम पामर हू।” कितना दु ख सहन कर माता ने मुझे बड़ा किया और इस स्थिति मे पहुचाया और आज मेरी माँ वृद्धावस्था मे लोगो के घर काम करके अपना और बहिन का पेट पाल रही है। धिक्कार है मुझे।” यह विचार अब रह-रहकर उसके दिमाग में घूम रहा है। घर से दुकान गया, वहां पर भी मन नहीं लगा। पुन घर आया और अपने कमरे मे जाकर सो गया, पर नींद नहीं आ रही है। करवटे बदल रहा है। बचपन के प्रसंग, मां की ममता उसके नेत्रो के सामने तैर रही है।

इधर दूसरा ही दिन रक्षाबंधन का था। रमिला अपनी सहेलियों के साथ जाकर राखी खरीद कर लाती है और मां से कहती है—मैं भैया के राखी बांधने जाऊंगी। मा के मना करने पर भी वह कुकुम, चावल आदि लेकर सुवह-सुवह ही भाई को राखी बांधने चली गई। दरवाजा खटखटाया पर भाभी ने नहीं खोला तो अपना कुंकुम, चावल आदि वहीं दरवाजे पर छोड

बहिन ! मुझे माफ कर दे, और ले यह मेरा हाथ, इस पर तू राखी बांध, मुझे प्राणो की आहूति देना पडे तो भी दूगा और तेरी रक्षा करुंगा। रमीला ने गोद से नीचे उतरकर अपने भैया को राखी बांधी। फिर रमेश मा के चरणो में गिर पडा। फफक-फफक कर रो रहा है रूंधे कंठ से कह रहा है—माँ ! मुझे माफ कर दो। मैं दुष्टी हूं, पापी हूं, मैंने तुम्हे दु ख देने मे कोई कसर नहीं रखी। तुम्हारे असीम उपकार हैं मेरे पर। माँ ! अब मैं माँ के दिल को, माँ की ममता को, माँ के उपकारों को जान पाया हूं। मुझे क्षमा कर दो। माँ आखिर माँ ही थी, वात्सल्य का सागर थी। माता के हृदय से सतान के प्रति सदा वात्सल्य की धार ही बहती रही है। माता चरणो में गिरे अपने रमेश को दोनो हाथो से उठाती है और अपने सीने से लगा लेती है।

प्रेमिला और उसकी माता, यह दृश्य देखती रह गई। रमेश, माता और बहिन को लेकर घर आया और प्रेमिला से बोला कि आज से तुझे अपनी माँ जैसी मेरी माँ को मानना है और अपनी बहिन जैसी मेरी बहिन को मानना हो, तो इस घर मे रहो नहीं तो अपनी माता के साथ पीहर प्रस्थान करो। अब प्रेमिला क्या बोले, उसका मुह बंद हो गया। रक्षाबधन के इस पवित्र त्यौहार पर पवित्र धागे से बंधे माता-पुत्र और बहिन का छिन्न-भिन्न ससार सुख से भर गया। वैर-बंधन के स्थान पर सभी प्रेम बधन मे बध गये।

गणेशाचार्य फरमाया करते थे—“बहुत से लोग खासतौर से वैश्यगण दवात और कलम को राखी बांधते है, क्षत्रिय लोग तलवार को राखी बांधते है। तराजू, तिजोरी आदि को भी राखी बांधते है। मगर यह सब रूढि है। इस रूढि में प्राण आ सकते है अगर आप यह संकल्प करले।”

1. मैंने कलम को राखी बांधी है तो इससे मैं झूठा जमा खर्च नहीं लिखूंगा। हे कलम ! तू मेरी रक्षा करना, कभी मेरे हृदय मे गलत जमा खर्च करने की दुर्बुद्धि उत्पन्न न होने देना।

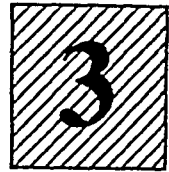
2 मैंने तराजू को राखी बांधी है तो मैं किसी को इससे कम तोलकर नहीं दूगा और अधिक भी नहीं लूंगा।

3. मैंने तिजोरी को राखी बांधी है तो न्याय नीति से उपार्जित धन ही इस तिजोरी मे रखूंगा।

4 मैंने तलवार को राखी बांधी है तो यह तलवार अब रक्षा के लिए ही काम आयेगी, इससे निरपराध प्राणों का हनन नहीं करूंगा।

इस प्रकार रक्षाबधन समस्त जगत की रक्षा करने का आह्वान करता है। अगर आपने अधिक नहीं तो माता-पिता की, भाई-बहिन की, मित्रों की एवं प्राणीमात्र की रक्षा करने का सकल्प कर लिया तो रक्षापर्व मनाना सफल हो जायेगा। इससे आपकी आत्मा की भी रक्षा हो जायेगी।





जन्माष्टमी

आज जन्माष्टमी का पवित्र दिवस है। ससार मे तीन तरह के पुरुष होते हैं—धर्म पुरुष, भोग पुरुष और कर्म पुरुष। **धर्म पुरुष**—तीर्थकर भगवन्तो को धर्म पुरुष कहा है। ये दुनियां में सबसे अधिक पुण्यशाली एवं शक्ति संपन्न होते हैं। 1 करोड इन्द्र मिलकर भी तीर्थकर की कनिष्ठा अगुली को नहीं हिला सकते हैं। **भोग पुरुष**—भोगपुरुष चक्रवर्ती को कहते हैं। छः खंड पृथ्वी पर एक छत्र राज्य करते हैं। पूर्वोपार्जित प्रबल पुण्य का भोग करते हैं। इसलिए इन्हे भोग पुरुष कहा है। **कर्म पुरुष**—जो पुरुष अपने ही पुरुषार्थ पराक्रम के बल से राज्य प्राप्त करते हैं, वे पुरुष कर्म पुरुष कहलाते हैं। वासुदेव को कर्मपुरुष कहा है। 20 लाख अष्टापद पक्षी के बराबर उनमे बल होता है। वे 1 करोड मन का भारी पत्थर हो तो भी उसे उलट सकते हैं। उनकी शक्ति अत्यंत प्रचंड होती है, उनके समक्ष कोई विरोधी ठहर नहीं पाता।

आज ऐसे कर्म पुरुष श्री कृष्ण वासुदेव की जन्म जयंति है। महान् पुरुषो का जन्म कब होता है, जब पृथ्वी पर पाप बढ़ता है, अधर्म अनीति अत्याचार का बोलबाला अधिक होता है। पापियो का उपद्रव बढ़ जाता है तब महान् पुरुषो का जन्म होता है। श्री कृष्ण जन्म के समय भी कतिपय राजा गूमडे के समान पीडाकारक थे। कंस उनमें से एक था। वह महाराज उग्रसेन का पुत्र था। माता के गर्भ में आया तो पिता के कलेजे का मांस खाने की इच्छा हुई। गर्भिणी अपनी यह अभिलाषा पति के समक्ष प्रकट न कर सकी, परन्तु साध पूरी न हो सकने के कारण वह दुर्बल और कृश होती गई।

महाराज उग्रसेन ने महारानी की वह दशा देखकर पूछा—निरन्तर दुवली होती जा रही हो, इसका क्या कारण है ?

महारानी ने अत्यन्त दुःख और लज्जा के साथ कहा—कोई पापी जीव गर्भ मे आया है। उसके प्रभाव से पति के कलेजे का मांस खाने का दोहद उत्पन्न हुआ है। तब महाराज ने किसी उपाय से वह दोहद पूर्ण किया।

बालक का जन्म हुआ तो उसे पापी जीव समझकर कांसे के पात्र में सुलाकर नदी में बहा दिया। साथ में एक पत्र लिखकर उस पात्र में रख दिया।

नदी में बहता-बहता वह शिशु शौरीपुरी के निकट पहुँचा। वहाँ एक गृहस्थ ने उसे देखा और किसी धीवर से उसे मंगवाया। पात्र खोलकर देखा तो उसमें शिशु निकला। संयोगवश वह गृहस्थ नि सतान था, अतएव बालक को पाकर उसे अत्यन्त हर्ष हुआ। उसने सोचा—मेरे घर में अधेरा था। अच्छा हुआ कि अनायास ही दीपक मिल गया। कांसे के पात्र में था, अतः उसका नाम कंस रख दिया।

लडका बड़ा हुआ तो खेलने-कूदने लगा। वह बड़ा चंचल एवं नटखट था। आये दिन कितने ही लडको से झगडता मारपीट करता और उलाहने लाता था। उसके पालक पिता एवं माता उब गये थे। उनके नाको में दम आ गया। उन्होंने सोचा—हम तो समझते थे कि यह बड़ा सुन्दर है, शरीर से हृष्ट-पुष्ट है और हमें आनन्द प्रदान करेगा, पर यह तो बड़ा झगडालू है। यह तो बुढिया के घर में बाघ आ गया।

पिता ने उबकर महाराज वसुदेव से कहा—“महाराज, यह लडका बहुत होशियार है। आपकी सेवा में रहने योग्य है। महाराज ने उसे रखना स्वीकार कर लिया और वह आनन्द के साथ रहने लगा।”

एक दिन जरासंध ने वसुदेव को संदेश भेजा कि—“अमुक राजा बड़ा उद्वण्ड है, आप जाकर उसे पराजित करें तो मैं अपनी कन्या आपको ब्याह दूँगा और साथ ही बड़े-बड़े कुछ नगर, हाथी, घोड़े आदि भेंट करूँगा।”

संदेश पाकर वसुदेव कंस के साथ युद्ध करने चले। दोनों ने वीरता के साथ युद्ध किया और उद्वण्ड राजा को बांधकर ले आये। इसी बीच किसी ने सूचना दी कि जरासंध की लडकी सुलक्षणा नहीं है। वह वसुदेव के योग्य नहीं है। अतएव बंदी राजा को लेकर वसुदेव जी जब जरासंध के समीप पहुँचे और विवाह के प्रस्ताव सामने आया तो वसुदेवजी ने कह दिया—इस युद्ध में विजय प्राप्त करने का श्रेय कंस को है। इसने मुझसे शिक्षा पाई है। मैं इसका गौरव बढ़ाना चाहता हूँ। अतएव जीवयशा कंस को दी जाये, क्योंकि शत्रु को बांधने का कार्य इसी ने किया है।

जरासंध ने प्रश्न किया—यह आपका पुत्र है ?

वसुदेव—मेरा पुत्र नहीं है। यह नदी में बहकर आया है। इसके साथ जो कागज था, उसमें महाराज उग्रसेन और महारानी धारणी का नाम लिखा था।

कंस यादवकुमार मान लिया गया और जरासंध ने अपनी कन्या का विवाह उसके साथ कर दिया। विवाह के पश्चात् जरासंध ने कंस से पूछा—आपको कहीं का राज्य चाहिए ?

कंस ने विचार किया—मेरे पिता ने मेरे साथ बड़ा ही नृशंस व्यवहार किया। मुझे नदी में बहा दिया। क्यों न मैं उनका राज्य छीन लूं ?

इस प्रकार विचार कर कंस ने मथुरा का राज्य माग लिया। साथ ही यह भी वचन ले लिया कि — अपने राज्य में मैं पूर्ण स्वतंत्र समझा जाऊंगा और मेरी किसी भी फरियाद पर आप विचार नहीं करेंगे।

कुछ दिन वहा व्यतीत करके कंस जरासंध की विशाल सेना साथ लेकर मथुरा के राज्य पर अधिकार जमाने के लिए चल पड़ा। महाराज उग्रसेन को जब यह समाचार मिला तो उन्होंने भी युद्ध की तैयारी की। मगर कंस की सेना के समक्ष वे पराजित हो गये। कंस ने उन्हें बांधकर कैद कर लिया और पशु की तरह पिजरे में कैद कर दिया और स्वयं राजसिंहासन पर आसीन हो गया। जीवयशा अपने पति की सराहना करने लगी—अहा, मेरे पति कितने शूरवीर एवं शक्तिशाली हैं, जिन्होंने बाप को भी कैद कर लिया।

कंस का एक छोटा भाई था—अतिमुक्तककुमार। पिता को बंदी के रूप में देखकर उसे बड़ा आघात लगा। कंस को ऐसा न करने के लिए बहुत समझाया पर जब कंस ने कान न दिया तो वह गृह त्याग कर साधु बन गया।

कंस ने एक बार विचार किया—वसुदेव जी मेरे परमोपकारी हैं। उन्होंने मेरा पालन-पोषण किया है। मुझे शस्त्रविद्या में पारंगत बनाया है। यह सारा वैभव उनकी कृपा से ही मिला है। मुझे उनका प्रत्युपकार करना चाहिए। इस प्रकार विचार कर अपने काका देवक की कन्या का विवाह वसुदेव जी के साथ करने का निश्चय किया। वसुदेव जी ने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। विवाह मुहूर्त निश्चित हो गया था। निश्चित समय पर वसुदेव जी वर बनकर उपस्थित हुए। मंगल वाद्य बजने लगे। नगर सुन्दर

कल्याण होना है तो प्रकृति स्वय उसकी रक्षा करेगी।

अनमने भाव से देवकी ने कहा—आपका कथन यथार्थ है परन्तु हमें प्रकृति पर निर्भर न रहकर स्वय भी उद्योग करना चाहिए। प्रकृति भी तो किसी न किसी माध्यम से ही कार्य करती है। हमें उसका माध्यम बनना चाहिए।

वसुदेव—बालक रक्षा के लिए उसके बदले दूसरी सतान लाना आवश्यक है। वह कहाँ से लाई जायेगी ?

देवकी—इसकी चिन्ता आप न करें। गोकुल में रहने वाली नन्द राजा की पत्नी यशोदा, मेरी प्रिय सखी है। उससे मेरी बातचीत हो चुकी है। वह मेरे सातवें पुत्र के बदले अपनी संतान देने को तैयार है। तो आप इतना करें कि अपनी संतान उसको दे आये और उसकी सतान यहाँ ले आये। इस उपाय से संतान की रक्षा हो जायेगी। इससे जगत् का कल्याण होगा और इन अत्याचारों का अंत आ जायेगा।

वसुदेवजी ने देवकी रानी की बात स्वीकार करली परन्तु उनके चारों ओर दिन-रात जो कड़ा पहरा कंस ने बैठा दिया था, उसके रहते यह काम होना कठिन जान पड़ता था। उधर ज्यो-ज्यो प्रसव का समय सन्निकट आने लगा, कंस ने पहरा अधिक कड़ा कर दिया। कितने ही सरदार पहरेदार बनकर चौकसी करने लगे। फिर भी जन्मने वाले बालक के पुण्य पर भरोसा करके वसुदेव जी और देवकी धैर्य धारण कर समय की प्रतिक्षा कर रहे थे।

भाद्रपद मास के कृष्णपक्ष की अष्टमी आई। अर्द्धरात्रि का समय, महारानी देवकी के उदर से श्रीकृष्ण जी का जन्म हुआ।

यह बात सिद्धान्तमान्य है कि तीर्थंकर चक्रवर्ती वासुदेव एव बलदेव जैसे महापुरुषों की जन्मते ही देवता सेवा करते हैं। श्रीकृष्ण का जन्म होते ही देवकी और वसुदेव के समस्त बंधन टूट गये। देवकी ने वसुदेव को जगाने के उद्देश्य से पुकारा—महाराज ! किंतु महाराज तो जाग ही रहे थे। दोनों ने देखा—बंधन टूट गये हैं।

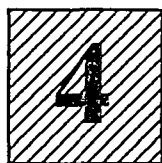
देवकी ने उतावली होकर कहा—नाथ, यही सर्वोत्तम अवसर है। आप गोकुल जाइये और इस बालक को यशोदा को सौंप आइए और उसके कोई सतान हुई हो तो लेते आइये।

हो चुकी है। आज शत्रु मिल गया तो उसे जीवित नहीं छोड़ना चाहिए। बस म्यान से तलवार निकाली और आ गये सामने। कृष्ण के पास शस्त्र नहीं था। निकाली बासुरी और उसी से प्रहार करते हुए कंस की चोटी पकड़ी और माथा घूमा दिया, हाथ भी घूम गया। तलवार पीछे चली गई। कृष्ण ने मुरली की मार से कंस को वहीं ढेर कर दिया।

जीवयशा रोती हुई अपने पिता जरासंध की शरण में गई। जरासंध ने यह नहीं सोचा कि बशी के प्रहार से कंस ढेर हो गया तो मैं किस खेत की मूली हूँ। पर कहा है—**विनाश काले विपरीत बुद्धिः**। कृष्ण ने जरासंध जो प्रतिवासुदेव था, उसे भी मौत के घाट उतार दिया और तीन खड के अधिपति बन शांति का वातावरण निर्मित किया। कंस को मारकर उन्होंने राजगद्दी नहीं ली अपितु उस पर जिनका अधिकार था, उन्हें अर्थात् उग्रसेन को प्रदान की। तथा उग्रसेन देवकी महाराज वसुदेव एवं ज्योतिष को काराग्रह से मुक्त किया। चारों ओर श्री कृष्ण की जय-जयकार होने लगी।

इसी प्रकार आगे चलकर कृष्ण ने दुर्योधन शिशुपाल आदि का अंत किया। जिस प्रकार श्री कृष्ण ने जन्म लेकर कालियानाग, पुतना राक्षसी, कंस, जरासंध, दुर्योधन, शिशुपाल इन प्रधान छ. शत्रुओं का सहार किया था, उसी प्रकार हमें भी आत्मा के प्रधान षडरिपुओं का क्रोध मोह मत्सर अहंकार एवं तृष्णा का संहार करना है। यही जन्माष्टमी का असली सदेश है। यदि आप इस सदेश को आत्मसात् करेंगे तो आपका जीवन धन्य हो जाएगा। आपको अपूर्व आनंद की प्राप्ति होगी।

कृष्ण वासुदेव तथा नेमिनाथ भगवान दोनों चचेरे भाई थे। नेमिनाथ भगवान से कृष्ण वासुदेव ज्येष्ठ भ्राता थे। यह यादव कुल कितना भाग्यशाली है कि उस कुल में नेमिनाथ भगवान तीर्थकर हुए और श्रीकृष्ण वासुदेव आनेवाली चौबीसी में तीर्थकर बनें। कारण कि उन्होंने धर्म की दलाली कर जिनशासन और भगवान के प्रवचन की बहुत प्रभावना की है। समय लेनेवाले को पूरा सहयोग दिया। यहाँ तक स्वयं अपनी पटरानियों को, पुत्र एवं पुत्रवधुओं को भगवान नेमिनाथ की शरण में भेजा, उन्हें भी सहर्ष दीक्षा की अनुमति दी। इस धर्मदलाली के प्रताप से श्री कृष्ण आने वाली चौबीस में 12वें अमम नामक तीर्थकर बनें। श्री कृष्ण गुणानुरागी थे। खराब में से भी अच्छा ढूँढ लेते थे। मातृभक्त भी थे। प्रतिदिन माता के चरण-स्पर्श का



स्वतन्त्रता दिवस

आज 15 अगस्त है, आज के दिन ब्रिटिश सरकार की गुलामी से भारत स्वतन्त्र हुआ। अंग्रेजों ने भारत में व्यापारी बनकर प्रवेश किया और ब्रिटिश इंडिया कम्पनी के माध्यम से अपना साम्राज्य स्थापित कर लिया। परिणामस्वरूप जितने भी देशी बादशाह, राजा महाराजा थे, अधिकांश अपनी-अपनी प्रभुत्व सत्ता खो बैठे और अंग्रेजों ने 150 वर्ष तक बड़ी शान से यहाँ पर राज किया। इस दरम्यान भारतवासियों को बहुत परेशान किया। भारतीय बुनकरों के हाथ काटकर हमारे शिला उद्योग को भी हानि पहुँचाने के भागीरथी प्रयास किए गए। दुर्भाग्य हमारा कि वे सफल होते गये। शनैः शनैः भारतीय बुद्धिजीवी लोग उनकी चालों को पहचानने लगे थे। तभी तो महाराष्ट्र में बाल गंगाधर तिलक, विनोबा भावे, सदाशिवराव गोखले, वीर सावरकर, गुजरात से - महात्मा गांधी, दयानंद सरस्वती, सरदार पटेल, पंजाब से - लाला लाजपत राय, सरदार भगवत सिंह, राजकुमारी अमृत कौर, सरदार बलदेव सिंह, उत्तर प्रदेश से - जवाहरलाल नेहरू, लालबहादुर शास्त्री, मौलाना अब्दुल कलाम आजाद, गोविन्द वल्लभ पंत, विजयलक्ष्मी पंडित, आचार्य कृपलानी, मध्य प्रदेश से - चन्द्रशेखर आजाद, बाबा साहेब भीमराव अम्बेडकर, बंगाल से - सुभाष चन्द्र बोस, सरोजिनी नायडू, विपिनचन्द्र पाल, श्यामप्रसाद मुखर्जी, विद्यानंद राय, बिहार से - डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, जयप्रकाश नारायण, डॉ. जाकिर हुसैन आदि अर्थात् सम्पूर्ण राष्ट्र से आजादी की दिवानी टोलियाँ निकल पड़ी थीं। नारा गूंजायमान हुआ - "अंग्रेजों ! भारत छोड़ो।" विदेशी कपड़ों की होली जलाई गई। लाठियों, गोलियों, कारावास, फॉसी, उपवास हर तरह के कष्टों को हंसते-हंसते झेला। हजारों मौतों को गले लगाकर शहीद बन गये। गांधीजी की अहिंसा और सत्याग्रह के सामने ब्रिटिश शासकों ने आत्म समर्पण कर दिया और 15 अगस्त 1947 को भारतीय शहीदों की बलिबेदी पर भारतीय स्वतन्त्रता का सूर्य उदित हुआ तथा हमारी स्वतन्त्रता का प्रतीक विश्व-



विजय तिरंगा प्यारा अर्थात् राष्ट्रीय ध्वज लहराने लगा।

स्वतन्त्रता का मूल्यांकन उतना ही महत्व रखता है, जितना कि उपलब्धि। आजादी का मायना महज गोरे राज का खात्मा नहीं था, बल्कि इसके पीछे भेदभाव से रहित समतावादी, प्रगतिशील व न्यायपूर्ण समाज की रचना का सपना सजाया गया था। जनता का राज्य जनता के लिए और जनता के द्वारा, पर लगता है यह सच्चाई नहीं है। आज हमारा प्रौढ़ होता लोकतन्त्र अब उन सपनों को जांचने, परखने के लिए हमें आह्वान कर रहा है। वक्त का पहिया अपनी गति से घूम रहा है। वक्त बदला है तो परिस्थितियाँ भी बदली है। आजादी मिलने के समय व आज के वक्त में मूल्यों में बड़ा अन्तर देखा जा सकता है। वैचारिक स्तर पर सभी राष्ट्र-भक्ति की महिमा का बखान करते मिलेगे, पर व्यवहार में इसे अपनाना जरूरी समझा नहीं जाता। क्रिकेट मैच में भारतीय टीम की जीत पर पटाखे छोड़ देना या देश भक्ति फिल्म को देखकर तालिया बजा देने मात्र से ही राष्ट्रभक्ति नहीं है। राष्ट्र के प्रति सम्मान की भावना हमारे स्वभाव का अंग होना चाहिए। सच तो यह है कि हमने आज के दिन ब्रिटिश सरकार से जरूर स्वतंत्रता प्राप्त कर ली पर उसको पचाने व उसका मूल्यांकन करने का साहस नहीं जुटा पाये। आज देश में एक ऐसे परिवेश का उदय हुआ है जिससे न केवल स्वतंत्रता के अर्थ बदल दिये हैं वरन् उसका अवमूल्यन भी किया है। आजादी जो कभी देश की अस्मिता की प्रतीक थी, आज कुछ स्वार्थी लोगों के बुद्धिहीन चिंतन के कारण अपना अर्थ खोती जा रही है। अन्यथा क्यों बढ़ता देश में लूट-खसोट, अपहरण, आत्महत्याएँ, चोरी, अनैतिकता, आतंकवाद, बलात्कार और कालाबाजारी का ग्राफ ? क्यों बनती नारी हवस का शिकार ? क्यों रंगे हाथ पकड़े जाते रिश्वत लेते हमारे नेतागण और उच्चस्थ अधिकारी ? क्यों गायब होते हैं रेलों, परिवहनो से सैकड़ों बल्लू व पंखे ? क्यों लेम्पपोस्ट होते हुए भी सड़को पर अंधेरा छाया रहता है ? इन सारे प्रश्नों पर विचार करने पर यही निष्कर्ष निकलता है कि भारत में स्वतंत्रता के मानदंड क्या है ? वस्तुस्थिति आज की यह है कि हमारी स्वतंत्रता केवल गीतों, कविताओं और लच्छेदार भाषणों तक सिमट गई है। व्यवहार और आचरण में उसका कोई स्थान नहीं है।



आजादी की धुन पर सवार लोगों ने देश को स्वतंत्रता तो दिला दी, लेकिन मकसद आज भी पूरा होने की राह ढूँढ रहा है। इसके लिए युवा पीढ़ी को आगे आना होगा। स्वतंत्रता को सही अर्थों में समझना होगा और उसे जीना होगा। पर हम कहाँ समझ रहे स्वतंत्रता के सही अर्थों को ?

आज विदेशी शिक्षा, विदेशी धर्म, विदेशी संस्कृति, विदेशी भाषा, विदेशी वेषभूषा, विदेशी खान-पान, विदेशी सभ्यता, विदेशी सोच, विदेशी अर्थ, विदेशी उद्योग, विदेशी संगीत, विदेशी उछलकूद, विदेशी यौन-साहित्य, विदेशी वास्तुकला अर्थात् हर तरह से स्वतंत्रता के बाद शनैः शनैः उन्हीं पर अवलम्बित हो गये, तब भारतीय आजादी का सही अर्थ कहाँ से मिलेगा ? अब तो भारत बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को ठीक वैसे आवाज दे रहा है जैसे आजादी के पूर्व ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कम्पनी गैस की विदेशी कम्पनी को लाकर हजारों निरपराधों को मौत के घाट उतार दिया गया था। इतना ही नहीं आज भारत ने विश्व की तमाम विकृतियों को स्वतः अपने ऊपर ओढ़ लिया है। अपने पूर्वजों के ज्ञान, दिशा बोध, त्याग-तपस्या, श्रम ईमान अनुभवों को भूल भूलाकर भोग विलासिता के पीछे दौड़ रहा है। आखिर वे अपनी संतानों को क्या बनाना चाहते हैं।

एक शराबी शराब पीकर सड़क के बीचोंबीच जाकर बैठ गया और वहीं पर समान से लदा ट्रक आ गया। ट्रक चालक ने बीच सड़क में बैठे शराबी से झल्ला कर कहा—अरे फटीचर ! यह सड़क क्या तुम्हारे बाप की है जो तुम सड़क के बीच बैठ गये हो ? उठ ! मुझे देरी हो रही है। शराबी बोला—भाई ! तुम्हे देर हो रही है, मुझे उससे क्या मतलब ? मैं तो अपनी आजादी का उपयोग कर रहा हूँ। अब हमारा देश आजाद हो गया है। इसलिए चाहे मैं सड़क के बीच में बैठूँ या किनारे पर। यह मेरी मर्जी। इस पर चालक बोला—अच्छ ! तुम बैठने में स्वतंत्र हो तो मैं भी तुम्हारे ऊपर ट्रक चलाने में स्वतंत्र हूँ। यह सुनते ही शराबी भाग खड़ा हुआ।

क्या स्वतंत्रता का यही अर्थ है ? आजादी से आपका मतलब क्या है ? यही कि आजादी के नाम पर जो कुछ मिला है, वह यह है—हर कहीं खड़े होकर चिल्लाना। हर प्रकार की परीक्षाओं में खुलकर नकल कर लेना। दुल्हनो को दहेज न लाने पर जला देना। महिलाओं और बच्चियों से बलात्कार करना। धर्म, जाति, भाषा आदि के नाम पर अशिक्षित एवं भोली



अलौकिक महापर्व—“पर्युषण”

भारतीय सस्कृति मे पर्व का बहुत महत्त्व है। वर्ष के तीन सौ साठ दिन मे शताधिक पर्व आ जाते है। पर्युषण-पर्व उसी शृंखला की एक कड़ी है। यह भादव-मास मे सामान्य त्योहारो की तरह आता है, इसलिए पर्व है, किन्तु यह आत्म-शुद्धि का प्रेरक, उत्प्रेरक है, इसलिए महापर्व है एव जैनो का एक मात्र विशिष्टतम अलौकिक पर्व है। कुछ पर्व अपनी व्यापक लोकप्रियता के कारण सभी जातियो, धर्मो के द्वारा मनाए जाते है, परन्तु यह वैसा भौतिक-पर्व नहीं है। शरीर केन्द्रित पर्व शरीर सुख की सामग्री जुटाते है। आध्यात्मिक पर्व आत्म केन्द्रित होते है, इसलिए वे आत्मसुख की सामग्री जुटाते हैं। कुछ पर्व तात्कालिक होते है। वे किसी पात्र या घटना विशेष के साथ जुडे होते है किन्तु यह पर्युषण-पर्व शाश्वत विशुद्ध आध्यात्मिक एव अलौकिक अष्टदिवसीय महापर्व है, जो प्रतिवर्ष मानव-मन को नया दिशा-बोध देकर चले जाते है, फिर सभालने के लिए लौट आते है।

पर्युषण का शाब्दिक अर्थ है—परि अर्थात् चारो ओर से सिमटकर, वसन-एक स्थान पर निवास करना या स्वयं मे वास करना। पर्युषण शब्द को प्राकृत भाषा मे “पज्जूसण” भी कहते है। जिसका सस्कृत रूपान्तर है पर्युषमन जिसका अभिप्राय है—परिसमन्तात् उपशमन चित्तवृत्ति निरोध क्रियते यस्मिन् तत् अर्थात् चारो ओर से बहिर्मुखी चित्तवृत्तियो को रोककर आत्मनिरीक्षण और आत्मचितन के लिए केन्द्रित करना। अतः फलितार्थ यही हुआ कि “आत्म निरीक्षण ही पर्युषण है।” अथवा “पज्जूसणा” यह भी प्राकृत भाषा का एक शब्द है। जिसका-सस्कृत रूपान्तर है—“पर्युपशमना”। जिसका फलितार्थ होता है—चारो ओर से मनोवृत्तियो को रोककर आत्मा के अत्यधिक निकट रहना।

मैत्री भाव का प्रेरक पर्युषण—परि समन्तात् उषणं-निवास सर्वजीवैः सर्वभावनैति पर्युषणम्। सब जीवो के साथ सर्वभाव से मैत्री भावना पर्युषण है।

उपशम भाव का प्रेरक पर्युषण—परि समन्तात् उपशमनं कषायाणां इन्द्रिय विषयाणा च यस्मिन् तत् पर्युशमन। इन्द्रिय विषय और कषायों का उपशमन करना पर्युषण है।

तपोभाव का प्रेरक पर्युषण— परि समन्तात् उषणं दुष्कर्माणा पर्युषण। चारों ओर से एकचित्त होकर दुष्ट कर्मों का दहन करना पर्युषण है। तपश्चर्या आत्मशुद्धि हेतोः यस्मिन् पर्वणि सा पर्युषणा।

उपासना का प्रेरक पर्युषण—परि-परितः उपासना—आत्मदेवस्य देवाधिदेवस्य परमात्मनो अर्हत् देवस्य च तस्मिन् सा पर्युपासना। आत्मा-परमात्मा तथा अरिहत भगवान् की भावपूर्वक उपासना करना पर्युषण है।

साधर्मिक भाव का प्रेरक पर्युषण—परिजुषणं—परि समन्तात् जुषणं साधर्मिकैः सह प्रीतिकरणं सहयोगकरण च यस्मिन् तत् परिजुषणं। साधर्मिक के साथ प्रेम एवं सहयोग पूर्ण व्यवहार करना पर्युषण है।

उपरोक्त सभी व्याख्याएं पर्युषण मे किये जाने वाले धार्मिक कार्यों से जुडी हुई है।

मूल परिभाषा जिसे इन शब्दो मे कहा गया है—“परिसमन्तात् उष्यते स्थीयते यस्मिन् तत् पर्युषणम्”।

चारों ओर से हटकर स्वभाव मे निवास करना, ठहरना पर्युषण का वास्तविक उद्देश्य है। जिन लालसाओं और वासनाओं के कारण आत्मा विक्षुब्ध, संतप्त और चंचल हो गई है, उन विकारी, वैभाविक परिणामो को शांत करना, आत्मस्वरूप मे रमण करना, अलौकिक आनंद का अनुभव करना ही पर्युषण है। यह पर्व आत्मा का पर्व है, अपने आपको ज्योतिर्मय स्वरूप के चिन्तन मे सर्वात्मना समर्पित कर अनंत अक्षय आनंद के अमृत सागर में अवगाहन करना ही इस पर्व का परम एवं चरम उद्देश्य है।

दुनियां की भीड़-भाड मे आप खंड-खंड होकर जी सकते है, पर आध्यात्म जगत मे आपको अखंड होकर अपनी समग्रता के साथ जीना पडेगा औरों के साथ एकता की बातें करना सरल है। पर अपने आप में सहज होकर जीना जरा कठिन है चूकि इसके लिए पूरी ईमानदारी रखनी होती है। Love with your self in the present moment को पर्युषण की उपासना का



का समीक्षण करना आवश्यक है। एक वर्ष तक मैत्री भाव का समीक्षण करते हुए प्राणी मात्र के साथ मैत्री साधने का अभ्यास और उसके बाद संवत्सरी के पवित्र दिन पर प्राणी मात्र के साथ मैत्री का सकल्प अपने आप में एक आचरणात्मक अनुष्ठान होगा।

पर्युषण पर्व अहंकार और ममकार को कम करते हुए आत्म दिशा की ओर प्रस्थान करने का पर्व है। आत्मालोचन के दर्पण में स्वयं का सूक्ष्मरीत्या अवलोकन करते हुए जहाँ कहीं कुछ अवाछित हो, उसकी शल्य चिकित्सा कर सम्पूर्ण स्वास्थ्य का अनुभव करना। इस अर्थ में हम पर्युषण पर्व को स्वास्थ्य का पर्व भी कह सकते हैं। हम स्वयं स्वस्थ बने, आत्मस्थ बने और दूसरों को भी स्वस्थ, आत्मस्थ बनने की प्रेरणा दे।

पर्युषण पर्व पुरुषार्थ का पर्व है। दूसरे शब्दों में यह वासनाओं को उखाड़ फेंकने का पर्व है। यह पर्युषण पर्व सिखाता है आत्म जगत् में फिर से नई क्रान्ति उत्पन्न करना और इन्द्रिय भोगों पर त्याग का अकुश लगाना। यह स्पष्ट है कि निरकुंश वासनाएँ तथा असीम इच्छाएँ मानव को दुःखी बनाती हैं। यदि मनुष्य के दुःखों का कारण ढूँढा जाय तो पहला कारण है—आत्म तत्त्व से अपरिचय, दूसरा कारण है—इन्द्रियों की दासता और तीसरा कारण है—मन का असयम। पर्युषण पर्व आध्यात्म की पूर्व भूमिकाओं का श्रावक एव साधु को विवेकपूर्ण ज्ञान तो देता ही है, परन्तु बिना पुरुषार्थ किए उन भूमिकाओं पर खड़ा होना असंभव है, अतः इन आठ दिनों में सलक्ष्य उस दिशा में प्रयत्नशील होने की जरूरत है। इन पर्व के दिनों में 24 घंटों में से 10 मिनट भी व्यक्ति यदि अपनी आत्मा में ईमानदारी से जीये तो वह पुरुषार्थ उसके जीवन में नई क्रान्ति घटित कर सकता है। कारण यह पर्युषण पर्व अलौकिक पर्व है। इस पर्युषण पर्व की अलौकिकता का मुख्य कारण है इस पर्व के साथ अनेक जीवों के आस्था परमाणु जुड़े हुए हैं अतः सभी जैनी अतिव्यस्तता के बावजूद भी इसे मनाने को तैयार हो जाते हैं। इस पर्वाधिराज की आराधना ने सदा-सदा से जैन-अनुयायियों को प्रभावित और स्फुरित किया है। कभी स्थानक में नहीं आने वाले, कभी भी उपवास, सामायिक, पौषध नहीं करने वाले भी इस पावन पर्व-पर्युषण की उपस्थिति पर कहीं न कहीं से आंदोलित अवश्य हो उठते हैं।



इस पावन पर्व पर्युषण की यह एक अलौकिक विशेषता समझिए कि अन्य दिनों में हमारी आत्मा चाहे सोई हुई हो, चाहे इधर-उधर के प्रपचों में उलझी हुई हो, खाने-पीने, पहनने-ओढ़ने की होड़ में लगी हो अथवा बाजारों की सोदेबाजी में जुडी हो अपने स्वरूप को चाहे जितना धुधला कर दिया हो, परन्तु पर्युषण-पर्व के दिनों में अगड़ाई लेकर जाग उठती है। इन दिनों में हमारी अन्तरात्मा उन सब झंझटों को एक किनारे रखकर तप, त्याग, वैराग्य की त्रिवेणी में स्नान करके शुद्ध होने के लिए तत्पर हो जाती है। अपने आत्मस्वरूप को प्रकाशित करने के लिए पुरुषार्थ रत बन जाती है। क्या यह पर्युषण-पर्व की ही अलौकिकता नहीं है ? इन दिनों में शुभ परमाणुओं का सहज संचार होता है जिससे बालक, वृद्ध, प्रौढ, युवक एवं महिलाओं सभी के अन्तर में अपार उत्साह दिखाई देता है। अन्य दिनों में भले ही वे सांसारिक कार्यों में व्यस्त रहते हैं, पर पर्युषण के दिनों में तो प्रायः सभी जैनी अपने लौकिक कार्यों को छोड़कर तप जप एवं व्याख्यान श्रवण हेतु धर्मस्थानों में सहज ही बिना किसी प्रेरणा के स्वतः ही चले आते हैं।

जहाँ अन्य पर्वों पर बच्चों में खाने-पीने, अच्छे वस्त्र पहनने आदि के लिए झगड़े होते हैं, वहाँ इन्हीं पुनीत दिनों में देखा जाता है कि बच्चे भी तपस्या करने के लिए मचलते हैं। कितना आध्यात्मिक सस्कार है पर्व के इन पुनीत क्षणों में ? माता-पिता उन्हें समझाते हैं, प्रलोभन भी देते हैं—बेटा ! तुमसे उपवास नहीं होगा, एकासना करलो। लेकिन पर्युषण पर्व की विरासत में मिले हुए सस्कार उन सुकुमार बच्चों को भी प्रलोभन से नहीं डिगा सकते। यह पर्वाधिराज पर्व का ही तो अलौकिक प्रभाव है कि वे नन्हे मुन्ने बच्चे भी इन दिनों में तप, त्याग, सेवा आदि धर्म की आराधना के लिए उत्साहित हो जाते हैं। वस्तुतः यह पावन-पर्व प्राणी मात्र के लिए शांति प्रदाता एवं अभयदाता है। इस पर्व को हम भरत क्षेत्र वासी ही मनाते हैं ऐसी बात नहीं है प्रत्युत सम्पूर्ण अढ़ाई द्वीप प्रमाण मनुष्य लोक में जहाँ कहीं भी आत्मसाधक है, हमारे समानधर्मी या सहधर्मी हैं अथवा जो अपनी आत्मा का विकास चाहते हैं, वे सभी अपने-अपने क्षेत्र में इस पर्व की आराधना करते हैं। वे सभी क्षमा, मैत्री, स्वधर्मी वात्सल्य, सेवा, करुणा, दया-दान, अभयदान, तप, त्याग, जाप, ब्रह्मचर्य की आराधना आदि-आदि ऐसी आध्यात्म आराधना करते हैं कि जिससे सारे विश्व का वायुमंडल प्रभावित



पर्वतीय मार्ग से कहीं भाग गया। परन्तु धन्ना सार्थवाह ने नरवीर को ढूढ़ निकाला और उसने नरवीर की पत्नी जो सगर्भा थी, उस पर तलवार चला दी जिससे दो प्राणियों की हत्या हो गई। उससे धन्ना सार्थवाह की आत्मा भी काप उठी और उसने जाकर सारी बात मालवाधिपति के सन्मुख कही तो मालवाधिपति भी कुपित होकर बोले—रे पापी ! मैंने सेना बालहत्या एव स्त्रीहत्या करने के लिए नहीं दी थी। निर्लज्ज निकल जाओ मेरे देश से।” राजा के कोप को देखकर धन्ना सार्थवाह जैसा खडा था वैसा ही वहाँ से सीधा जगल में चला गया। उसे भी इस बात का भारी अनुताप हो रहा था अतः वन में जाकर तापस बन गया।

इधर नरवीर पत्नी वियोग से शोकातुर एव पागल सा होकर जगल में भटकने लगा। वह थककर जब वृक्ष के नीचे विश्राम कर रहा था कि आचार्य यशोभद्र सूरि अपने शिष्यों के साथ उधर से जा रहे थे, उन्हें देखकर वह दौड़ता हुआ आचार्य महाराज के चरणों में गिर पडा और करुण-क्रन्दन करने लगा। आचार्यश्री ने उसे आश्वासन देकर रोने का कारण पूछा तो उसने कहा—भगवन् ! मैं हत्यारा, घोर पापी हूँ, मैंने अनेक पाप किये हैं, सैकड़ों प्राणियों को मौत के घाट उतारा है, हजारों को लूटा है। बहुत अत्याचार किये हैं। आचार्य श्री जी बोले—“वत्स ! घबराओ मत ! तुम्हें अपने जिन पापकृत्यों से पश्चात्ताप हो रहा है उन सभी को छोड़ दो और सन्मार्ग पर आरूढ हो जाओ। तुम सुखी हो जाओगे।”

बताओ, भगवन् ! मैं किन-किन पापों का त्याग करूँ ? नरवीर ने जिज्ञासापूर्वक श्रद्धा के साथ पूछा। तब आचार्य श्री ने सप्त कुव्यसन जुआं, मांस, शराब, चोरी, शिकार, परस्त्री गमन, वेश्यागमन का त्याग कराया। नरवीर ने सश्रद्धा त्याग कर कहा—भगवन् ! अब मैं कभी कुछ गलत कार्य नहीं करूंगा। आचार्य श्री ने कहा—“वत्स ! अब तुम्हारा भविष्य उज्ज्वल है, अब तू यहाँ से सीधा तैलंग देश की ओर चला जा। वहीं तेरा उत्थान होगा।” आचार्य श्री जी की आज्ञा शिरोधार्य कर नरवीर तैलंग देश की ओर चल पडा। जब वह एकशिला नगर पहुँचा। विश्राम हेतु नगर के बाहर एक बगीचे में वृक्ष के नीचे बैठा हुआ था, उसे बहुत तेज भूख लगी थी, इस कारण नींद नहीं आई। इतने में एक पुजारी वहाँ आया, पुजारी ने परिचय पूछा। उसने अपना सक्षिप्त परिचय दिया और कहा—मुझे बहुत तेज भूख लग रही है, इसे मिटाने

का कोई उपाय हो तो बताओ। पुजारी ने कहा—यहाँ के आढर सेठ के यहाँ चला जा। वहाँ सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त तक दान दिया जाता है। वहाँ तुम्हारे जैसे अनेक लोग भोजन प्राप्त करते हैं। वे बहुत ही दयालु मानवीय सद्गुण सम्पन्न एव करुणाशील हैं। वे जैन धर्मी श्रावक हैं। संत महापुरुषों की बहुत सेवा भक्ति करते हैं।” नरवीर ने सोचा—मैं क्षत्रिय पुत्र हूँ। अतः याचना तो मैं नहीं करूँगा और न ही मुफ्त का खाऊँगा। यदि सेठजी कुछ काम कराले तो कार्य करके भोजन कर लूँगा। पहुँचा वह सेठ के पास और बोला—मुझे आपकी सेवा चाहिए। आप जो कार्य कहेगे, वह सेवा मैं करूँगा। सेठजी ने उसको दानशाला पर नियुक्त कर दिया। नरवीर ने थोड़े ही दिनों में अपने विनम्र व्यवहार, कर्मठ पुरुषार्थ से सारे परिवार का दिल जीत लिया। वह सेठ के घर में सबका प्रिय पात्र बन गया।

भादवा महिने में लोग पर्युषण-पर्व मनाने की जोर-शोर से तैयारी लगे। उसने देखा कि पर्युषण आने से पूर्व कई जनो ने तपस्या प्रारंभ कर दी। इन आठ दिनों में कोई भी जैन किसी प्रकार की जीव हिंसा नहीं करता। अनाज पीसना, कूटना, हरी वनस्पति का उपयोग तथा आठ दिन व्यापार धन्धे सभी बंद रहते। कई लोग तो आठों ही दिन उपवास और पौषध में बिताते, धर्मस्थान में ही रहते तथा प्रतिदिन प्रवचन श्रवण करते, प्रतिक्रमण भी करते हैं। संवत्सरी से एक दिन पूर्व संयोगवश आढर सेठ ने किसी महत्त्वपूर्ण कार्य के लिए नरवीर को दूसरे गाँव भेजा। नरवीर उस कार्य को सम्पन्न कर संवत्सरी के दिन सेठ के घर पहुँचा तो देखा कि घर में कोई नहीं था। सभी प्रवचन-श्रवण करने गये थे। वह भी प्रवचन सभा में पहुँच गया, देखा गुरुदेव प्रवचन फरमा रहे सभी श्रोता मंत्र मुग्ध बने श्रवण कर रहे हैं। वह भी ऐसी जगह जाकर बैठा कि सेठ उसे देख सके। सेठजी प्रवचन श्रवण करने में तल्लीन थे, कुछ देर बाद अनायास उनकी दृष्टि नरवीर पर पड़ी। सेठजी ने सोचा—नरवीर अभी ही आया है, वह भूखा है। अतः उन्होंने महिलाओं की पक्ति में बैठी हुई अपनी पुत्रवधू को इशारे से कहा—घर जाओ और नरवीर को भोजन कराओ। पुत्रवधू का मन प्रवचन सुनने में लगा हुआ था, परन्तु सेठजी की आज्ञा होने से उसे उठना पड़ा। नरवीर भी सेठजी का इशारा पाकर घर पहुँचा। पुत्रवधू ने गुस्से में कहा—“जल्दी भोजन करलो। मुझे व्याख्यान से तुम्हारे लिए उठकर आना पड़ा।” कभी गुस्सा न होने



वाली सेठ की बड़ी पुत्रवधू को आज क्रुद्ध देखकर नरवीर ने पूछा—बड़ी बहूजी ! आज आप मुझ पर नाराज क्यों हो ? वह बोली—“नाराज न होऊ तो क्या करू ? आज सवत्सरी का दिवस है, पर्युषण का अतिम दिवस है, इतना अच्छा प्रवचन चल रहा था, बीच में उठकर आना पडा। आज हमारे सभी के उपवास है।” नरवीर ने सोचा—“मुझे भी आज उपवास करना था। वह शांति से विनयपूर्वक बोला—बड़ी बहूजी ! मैं भी आज उपवास करूंगा। आप धर्मस्थानक में जाईये। मैं भी वहीं आ रहा हूँ।”

बहू घबराई, बोली—सेठजी मुझ पर नाराज होंगे। तुम उपवास मत करो। नरवीर ने कहा—“मैं अपनी इच्छा से उपवास कर रहा हूँ। सेठजी नाराज नहीं होंगे। मैं सेठजी को आपके खिलाफ शिकायत नहीं करूंगा।” फिर भी बड़ी बहू भयभीत होती हुई धर्मस्थानक में चली गई। इधर नरवीर भी पहुँचा। सेठजी ने अपने पास बुलाकर धीरे से पूछा—नरवीर ! मालूम होता है, तुमने भोजन नहीं किया। नरवीर ने कहा—सेठजी ! आज महापर्व का अतिम दिवस है, मुझे उपवास का प्रत्याख्यान करादे। सेठजी ने गुरुदेव से उसको उपवास का प्रत्याख्यान कराया। नरवीर के जीवन में यह पहला उपवास था, मन में अत्यन्त आनंद आ रहा था। एकशिला नगरी में सर्वत्र नरवीर के उपवास की प्रशंसा हो रही थी। सेठजी भी सभी के समक्ष नरवीर के उदात्त गुणों का बखान कर रहे थे। नरवीर ने जीवन में आज पहली बार अपनी प्रशंसा श्रवण एव धन्यवाद प्राप्ति का सौभाग्य प्राप्त किया। दूसरे दिन सेठजी ने कहा—नरवीर ! अब तू मेरा स्वधर्मी बन्धु है। सभी को सकेत कर दिया कि इसे अब कोई नौकर न माने, उसके साथ स्वधर्मी बंधु का सा व्यवहार करे। सबने सेठजी की बात सहर्ष स्वीकार कर ली। नरवीर से सेठजी ने कहा—नरवीर ! पारणे का समय हो गया है, अतः अब तुम पारणा करलो। नरवीर पिता तुल्य सेठजी से बोला—आपसे पहले मैं पारणा नहीं करूंगा, स्वामी से पहले सेवक भोजन कैसे कर सकता है ? सेठजी बोले—अब तू हमारा सेवक नहीं है, हमारा साधर्मी बंधु है।

नरवीर—सेठजी ! आप मेरे परम उपकारी हैं, आपकी कृपा से ही मैं उपवास कर सका हूँ। पर्युषण महापर्व की महिमा भी मैं आपके निमित्त से जान सका हूँ।

वाली सेठ की बड़ी पुत्रवधू को आज क्रुद्ध देखकर नरवीर ने पूछा—बड़ी बहूजी ! आज आप मुझ पर नाराज क्यों हो ? वह बोली—“नाराज न होऊ तो क्या करूँ ? आज सवत्सरी का दिवस है, पर्युषण का अंतिम दिवस है, इतना अच्छा प्रवचन चल रहा था, बीच में उठकर आना पड़ा। आज हमारे सभी के उपवास है।” नरवीर ने सोचा—“मुझे भी आज उपवास करना था। वह शांति से विनयपूर्वक बोला—बड़ी बहूजी ! मैं भी आज उपवास करूँगा। आप धर्मस्थानक में जाईये। मैं भी वहीं आ रहा हूँ।”

बहू घबराई, बोली—सेठजी मुझ पर नाराज होंगे। तुम उपवास मत करो। नरवीर ने कहा—“ मैं अपनी इच्छा से उपवास कर रहा हूँ। सेठजी नाराज नहीं होंगे। मैं सेठजी को आपके खिलाफ शिकायत नहीं करूँगा।” फिर भी बड़ी बहू भयभीत होती हुई धर्मस्थानक में चली गई। इधर नरवीर भी पहुँचा। सेठजी ने अपने पास बुलाकर धीरे से पूछा—नरवीर ! मालूम होता है, तुमने भोजन नहीं किया। नरवीर ने कहा—सेठजी ! आज महापर्व का अंतिम दिवस है, मुझे उपवास का प्रत्याख्यान करादे। सेठजी ने गुरुदेव से उसको उपवास का प्रत्याख्यान कराया। नरवीर के जीवन में यह पहला उपवास था, मन में अत्यन्त आनंद आ रहा था। एकशिला नगरी में सर्वत्र नरवीर के उपवास की प्रशंसा हो रही थी। सेठजी भी सभी के समक्ष नरवीर के उदात्त गुणों का बखान कर रहे थे। नरवीर ने जीवन में आज पहली बार अपनी प्रशंसा श्रवण एव धन्यवाद प्राप्ति का सौभाग्य प्राप्त किया। दूसरे दिन सेठजी ने कहा—नरवीर ! अब तू मेरा स्वधर्मी बन्धु है। सभी को संकेत कर दिया कि इसे अब कोई नौकर न माने, उसके साथ स्वधर्मी बंधु का सा व्यवहार करे। सबने सेठजी की बात सहर्ष स्वीकार कर ली। नरवीर से सेठजी ने कहा—नरवीर ! पारण का समय हो गया है, अतः अब तुम पारणा कर लो। नरवीर पिता तुल्य सेठजी से बोला—आपसे पहले मैं पारणा नहीं करूँगा, स्वामी से पहले सेवक भोजन कैसे कर सकता है ? सेठजी बोले—अब तू हमारा सेवक नहीं है, हमारा साधर्मी बंधु है।

नरवीर—सेठजी ! आप मेरे परम उपकारी हैं, आपकी कृपा में ही मैं उपवास कर सका हूँ। पर्युषण महापर्व की महिमा भी मैं आपके निमित्त संतुष्ट हो सका हूँ।

नरवीर को असह्य पीड़ा हो रही थी। फिर भी शांति से सुन रहा था एव देख रहा था। वह मन में विचार कर रहा है—अहो ! पर्युषण पर्व और जैनधर्म का कितना प्रभाव है कि मुझे आज सबकी सेवा प्राप्त हो रही है। कैसा उत्तम धर्मिष्ठ आढर कुटुम्ब मुझे मिला है। मुझे सन्मार्ग राही बनाने वाले आचार्य यशोभद्र कितने महान् थे। ऐसा धर्म मुझे भव-भव में प्राप्त हो और मैं अरिहंत, सिद्ध, साहु और धर्म की शरण ग्रहण करता हूँ।” आढर सेठ ने नरवीर का मस्तक अपनी गोद में रख लिया। वैद्य नरवीर को बचाने के लिए जी-तोड़ परिश्रम कर रहा था, परन्तु आयुष्य के क्षणों को कौन बढ़ा सकता है ? नरवीर का जीवन-दीप बुझ गया। सेठ जी के मुख से चीख निकली, वे रो पड़े। सारा कुटुम्ब शोकमग्न होकर रूदन करने लगा। सारी नगरी में शोक व्याप्त हो गया। सर्वत्र नरवीर के गुणों की चर्चा होने लगी। कुछ समय पश्चात् उस एकशिला नगरी में अवधिज्ञानी मुनिराज पधारे। सेठ-सेठानी जब उन्हें वंदना करने गये तो उनके शोक-सतप्त हृदय को जानकर उन्होंने कहा—आढर सेठ ! तुम्हें नरवीर के पीछे इतना शोक सतप्त होना उचित नहीं है। उसने पर्युषण पर्व और जैनधर्म की महिमा आत्मसात् कर अपना जीवन पावन बना लिया है। वह यहाँ से आयुष्य पूर्ण कर देवपाल के यहाँ जन्मा है। भविष्य में गुजरात के महान् अहिंसक सम्राट कुमारपाल का अहिंसक महामंत्री उदयन होगा और नरवीर को सन्मार्ग राही बनाने वाले आचार्य यशोभद्र स्वामी काल धर्म को प्राप्त कर भविष्य में कुमारपाल के गुरु ज्योतिर्धर जैनाचार्य हेमचदसूरि बनेगे। यह सुन कर आढर सेठ और उसके कुटुम्ब का शोक दूर हुआ। सबको शांति का अनुभव हुआ।

यह है पावन पर्वाधिराज पर्युषण का अमित प्रभाव, उसकी अलौकिकता जिससे पापी नरवीर परम पावन बन गया। उद्वण्ड अविनीत से सरल एव विनीत बन गया। क्रोधी कामी एव खुखार डाकू से क्षमाशील घृतिमान शीलवान एव अहिंसक बन गया। कुगति के बजाय सद्गति एव सुकुल का अधिकारी बना।

इस परम-पावन पर्वाधिराज ने हमारी सम्पूर्ण सस्कृति को अपार-बल और स्थायित्व प्रदान किया है। आज हमारे पास धार्मिक सस्कारों की जो कुछ थोड़ी उपलब्धि बची है, वह इस पर्व की उपस्थिति से ही है। जब तक इस भरतक्षेत्र में यह पावन महापर्व पर्युषण रहेगा तब तक ही जैन-धर्म भी रहेगा।



इस प्रकार जैनत्व के सस्कारों को जिन्दा रखने वाला यह इस अलौकिक महापर्व 'पर्युषण' जो आत्मा का पर्व है, आत्म जागरण का पर्व है, आत्म-शुद्धि का पर्व है, आत्म-परिमार्जन एव आत्म-निरीक्षण का पर्व है। इन पर्व के दिनों में हम सोचें कि-विगतकाल में कषायों ने हमें कितना उद्वेलित किया ? शरीर इन्द्रिय और मन के विषयों ने आत्मा को कितना अपवित्र किया ? विकारी भावों की हमने कितनी दासता की ? विषयासक्त होकर हमने कितने अपराध किये ? प्रमादवश हम कितने गाफिल रहे ? कहाँ-कहाँ हमारी कथनी और करणी में अंतर रहा ? आत्मा में पर्वाराधना से कितनी निर्मलता आई, कितनी मात्रा में कषाय मंद हुए ? इन सबका आत्म-समीक्षण करते हुए आत्म-निन्दा, आत्म-गर्हा, आत्म-आलोचना, प्रतिक्रमण, प्रायश्चित द्वारा आत्मा का प्रक्षालन कर आत्मा के क्षमा गुण की अभिवृद्धि के साथ आत्मा के निकट पहुँचे और पर्युषण महापर्व की अलौकिकता को आत्मसात् करें।

समता विभूति आचार्य श्री नानेश की सुषुप्त चेतना में अभिनव क्रान्ति घटित करने वाला यही अलौकिक पर्युषण-महापर्व है। धार्मिक क्रियाओं के प्रति जिनके प्रारम्भिक जीवन में उपेक्षा भाव समाया हुआ था, स्व-प्रेरणा से नहीं, जीजाजी के आग्रह से प्रवचन-स्थल पर पहुँचे, सावत्सरिक प्रवचन में छट्टे आरे का वर्णन जब सुना, वह प्रथम-श्रवण ही रूपान्तरण का निमित्त बन गया। अनुश्रुत-अंश पर गहन चिंतन करते-करते आत्मा का सुषुप्त अद्भुत शौर्य जाग उठा। अद्भुत क्रान्ति घटित हुई, आत्मस्वरूप पाने के लिए चरण गतिशील बन गये। कौन जानता था इस महापर्व के निमित्त से प्रदीप्त यह लौ जन-जन के अज्ञान-अंधकार को छिन्न-भिन्न कर देगी। साधुमार्गी परम्परा के दीप्तिमत् आचार्यों की परम्परा "हु शि उ चौ श्री ज ग ना ना" ने आध्यात्मिक क्षितिज पर अपनी उज्ज्वल रश्मियाँ बिखेरी हैं। इसी शृंखला में प्रभु महावीर के 81वें पट्टधर बने आचार्य श्री नानेश। छट्टे आरे में मानवीय नैतिक मूल्यों की हासता के चित्रण से जिनकी आत्मा कांप उठी, उस क्लेश ककास भरे वातावरण में जीवन कितना दूभर है ? ना, ना। मुझे नहीं जाना है-ऐसी घृणित मानव-देह में। स्वयं ने उत्थान की राह पकड़ी एवं हिंसादि क्रूर कर्म के द्वारा जो उसकी बुनियाद डाल रहे थे ऐसे दलित मानवों को भी उद्बोधन देकर पतित होने से बचा लिया, धर्मपाल बना दिया।

सदियों के बाद उदित होते हैं ऐसे ज्योतिर्मानि नक्षत्र। विश्व आज विषमता की ज्वालाओ से धू-धू कर जल रहा है, उसके शमन का पूर्ण वैज्ञानिक समाधान प्रस्तुत करता है, उनके द्वारा प्रदत्त समता-दर्शन जो न केवल सैद्धान्तिक वरन् प्रायोगिक रूप में प्रस्तुत किया गया है। पर्युषण के द्वारा जिस मैत्री, क्षमा, समता की सर्जना चाहते हैं उन्हीं सदगुणों से हर पल अनुप्राणित आपका जीवन आज भी जन-जन के लिए प्रेरक है।

उपवास के बाद प्रतिक्रमण, आलोचना, प्रायश्चित और क्षमायाचना। ये चार कड़िया हैं एक दूसरे से जुड़ी हुई हैं। लाभ और परिणाम की दृष्टि से सभी का एक ही लक्ष्य है-विकारो की शुद्धि, विचारो की शुद्धि भावो की पवित्रता पापो का प्रक्षालन। प्रतिक्रमण और आलोचना से मन की गांठें खुल जाती हैं, प्रायश्चित से आत्म-शुद्धि होती है और क्षमापना से तो सारे विश्व के साथ मैत्री साधी जा सकती है। जिस वीर के हाथ में क्षमा का अमोघ शस्त्र है, उसका दुर्जन कुछ भी बिगाड़ नहीं सकता है। राम का बाण कभी खाली नहीं जाता था, वैसे ही क्षमा का तीर कभी निष्फल नहीं होता। रामबाण से भी इसकी विलक्षणता है। राम का बाण तो शत्रु का नाश करता था परन्तु क्षमाबाण शत्रुता का ही नाश कर देता है। शत्रु को जीवनदान देता है, शत्रु को मित्र बनाता है, और शत्रुता को मिटाता है। ऐसा अद्भुत शस्त्र जिसके पास हो उसे संसार में कोई भय नहीं होता। संवत्सरी का दिन सभी को अभय बनाने का दिन है। जो सभी को अभय बनाता है, वह स्वयं अभय बन जाता है।

कुछ वर्ष पूर्व जर्मनी में रहने वाले जैन भाईयो ने संवत्सरी पर्व के अवसर पर एक सामूहिक क्षमापना समारोह किया। उसमें वहाँ रहने वाले जैनो के अलावा अपने जर्मन मित्रो को भी उन्होंने आमंत्रित किया। जब जर्मन लोगो को बताया गया कि आज के दिन हम सब अपने वर्ष भर के जीवन का आचार-व्यवहार का निरीक्षण कर जिस किसी के साथ भी कुछ अनबन या कटुता पैदा हुई है, मन-मुटाव या वैर विरोध हुआ है तो उससे तो क्षमा मांगते ही हैं किन्तु यो प्रत्येक भाई के साथ विनम्रतापूर्वक गले लगकर परस्पर क्षमापना करते हैं। यह सुन जर्मन लोग इतने प्रभावित प्रसन्न एवं आश्चर्यचकित हुए कि वाह ! अद्भूत कहने लगे। वे बोले वास्तव में ही यह एक उत्कृष्ट मानवीय आदर्श है। ऐसा अद्भूत त्यौहार उन्होंने जीवन में पहली बार देखा सुना और महसूस किया कि त्यौहारो और पर्वो के माध्यम से किस प्रकार हमारा जीवन परिवर्तित हो सकता है। यदि संसार में सभी व्यक्ति इस प्रकार अपनी भूलों का निरीक्षण कर उन पर सरल हृदय से पश्चाताप करने लगे और फिर एक दूसरे के साथ इस प्रकार क्षमायाचना करके मैत्री और बंधुत्व भावना को सुदृढ करने लग जाय। तो प्रेम, मैत्री, बंधुत्व तथा सौहार्द का वायुमंडल निर्मित होकर सर्वत्र सुख और शांति का



सौंदर्य खिल उठे।

इस संवत्सरी पर्व के विषय में जिज्ञासा होना स्वाभाविक है कि इस पर्व का उद्गम कैसे हुआ ? क्या कोई घटना इसके साथ जुड़ी हुई है ? इतिहास इस विषय में क्या कहता है ?

इसका समाधान है कि यह संवत्सरी महापर्व सनातनकाल से मनाया जा रहा है। इसका इतिहास कुछ वर्षों या शताब्दियों का नहीं है अपितु अतीत की अनंत गहराइयों से जुड़ा हुआ है। इस अवसर्पिणी काल के चरम तीर्थकर प्रभु महावीर हैं। पूर्व के तीर्थकरो ने जो प्रतिपादित और आचरित किया है, वही प्रभु महावीर ने प्ररूपित एवं व्यवहृत किया है। क्योंकि सभी तीर्थकरो की मौलिक प्ररूपणा एक समान होती है। समवायांग सूत्र में कहा गया है—

समणे भगवं महावीरे वासाणं सवीसइराए मासे वइक्कंते।

सत्तरिएहिं राइंदिएहिं सेसेत्ति वासावास पज्जवसेइ ॥

अर्थात् श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने वर्षावास का एक माह और 20 अहोरात्रि व्यतीत होने पर और 70 अहोरात्रि अवशेष रहने पर पर्युषण-कल्प अर्थात् संवत्सरी महापर्व की आराधना की। चातुर्मास का प्रारंभ आषाढ शुक्ला पूर्णिमा से होता है। ठीक उससे 50वे दिन भाद्रपद शुक्ला पचमी को संवत्सरी पर्व आता है।

इस आगम पाठ से यह स्पष्ट होता है कि प्रभु महावीर एव उनके पूर्ववर्ती तीर्थकरो ने भी इस पर्व का आराधन किया था। इससे इस पर्व की सनातनता एवं महत्ता सिद्ध होती है।

यह दिन आध्यात्मिक दृष्टिकोण से तो महत्वपूर्ण है ही, समग्र सृष्टि के लिए युगान्तरकारी है। जैन सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक काल चक्र के बारह आरे होते हैं। छ. आरे उत्सर्पिणी (उत्तरोत्तर विकास) काल के हैं और छ आरे अवसर्पिणी (उत्तरोत्तर हास) काल के हैं। जिस समय में मनुष्य आदि प्राणियों के शरीर की ऊंचाई-चौड़ाई एवं शक्ति में तथा जमीन आदि पदार्थों के रस कस में उत्तरोत्तर उत्कर्ष होता जाता है, वह काल उत्सर्पिणी काल कहलाता है। तथा जिस समय इनका क्रमिक हास होता जाता है, वह समय अवसर्पिणी काल कहलाता है। यह काल का चक्र निरन्तर घूमता रहता है। वर्तमान में अवसर्पिणी काल का पंचम दु षम नाम का आरा चल रहा है।

इसका समाधान है कि यह अष्टदिवसीय पर्युषण मनाने की परम्परा जैनाचार्यों की देन है। उनका कहना है—जैसे प्रत्येक त्यौहार योजनापूर्वक मनाये जाते हैं वैसे ही महापर्व संवत्सरी के पूर्व के 7 दिन उसकी पूर्व की भूमिका के रूप में निर्धारित किये जाने चाहिये।

आज के युग में विविध समाहों का भी आयोजन देखा जाता है, जैसे कभी राष्ट्रीय समाह मनाया जाता है। कभी कृषि समाह तो कभी श्रम समाह। इन आयोजित समाहों में अन्य कार्यों से छुट्टी लेकर विशेष कार्यक्रमों की ओर ध्यान दिया जाता है। जैसे राष्ट्रीय समाह में राष्ट्र हित के दृष्टिकोण को प्रमुखता देकर तदनुसृत कार्यक्रमों का आयोजन किया जाता है। सफाई-समाह में स्वच्छता को प्रमुखता दी जाती है वैसे ही यह पर्युषण पर्व भी आध्यात्मिक समाह है। प्रारंभ के 7 दिन साधना अभ्यास के क्षण हैं। आठवाँ दिन परीक्षण का है। इसमें बाह्य जगत के क्रिया-कलापों से निवृत्ति लेकर आध्यात्मिक जगत में संचार किया जाता है। आत्मा को शुद्ध बनाने वाले कार्यक्रमों को प्रमुखता दी जाती है। इन प्रारंभ के 7 दिनों में विकार विजय की तैयारी की जाती है। पर्युषण का आठवाँ दिन पूर्ण विजय-प्राप्ति का दिन है। संवत्सरी के दिन तो सारा मैल धूल जाना चाहिए। ताकि सुलझे हुए विचारों से सच्चे दिल से क्षमायाचना कर सके।

संवत्सरी पर्व जीवन में मैत्री की भावना भरता है, मेलजोल का हाथ बढ़ाने की प्रेरणा देता है। इस पर्व के दिन वायुमंडल इतना धर्ममय बन जाता है कि जैन समाज का कोई भी व्यक्ति जिसमें किंचित मात्र भी धर्म के संस्कार हैं, वह चाहे कितना भी व्यस्त क्यों न हो, इस पर्व के दिन उसके मन में भी त्याग, तप, जप के भाव प्रगट होते हैं। उसके कदम धर्मस्थानक की ओर बढ़ जाते हैं। आश्चर्य तो तब होता है जब कभी भी उपवास सामायिक पौषध नहीं करने वाले व्यक्ति अठाईयाँ, मासखमण की तपश्चर्या कर स्थानक में प्रतिक्रमण करते नजर आते हैं। अनेक युवक-युवतियाँ द्रव्य की मर्यादाएँ करते हुए रात्रि भोजन का त्याग करते हैं। होटल, सिनेमा का प्रत्याख्यान करते हैं। छोटे-छोटे बच्चे भी खाना और खेलना छोड़कर मुखवस्त्रिका बांधकर चद्दर ओढ़कर पूंजनी हाथ में लेकर धर्मस्थानक में बैठकर सामायिक करते नजर आते हैं।

एक माँ के जाए, साथ जन्में, साथ खेले, साथ पढे, समय आया, राग-द्वेष की हवा चली, कषाय से अभिभूत होकर दोनो भाई बिछुड गये। एक पर पिता को सम्भालने का दायित्व आया, दूसरे पर माँ का। वैर के कारण माँ-बाप भी आपस मे मिल नहीं सकते। माँ की मृत्यु हुई, दूसरा भाई अपने भाई के घर नहीं गया। कुछ समय बाद पिताजी का आयुष्य पूर्ण हुआ, वह भाई भी उस भाई के घर नहीं गया। सवत्सरी महापर्व, आत्मशुद्धि की प्रेरणा लेकर आया, आत्मा को पवित्र बनाने की हवा चली। उस हवा ने मन की कालुष्यता धो डाली। मैत्री की भावना जागी, बडा भाई, छोटे भाई के घर पहुचा, वैर वैमनस्य समाप्त हुआ। छोटा भाई बडे भाई के चरणो मे गिर पडा। अश्रुओ से बडे भाई के चरणो का प्रक्षालन करने लगा। बडे भाई ने छोटे भाई को उठाकर अपने गले से लगा लिया। परस्पर क्षमायाचना करने लगे। यह है संवत्सरी का महात्म्य।

सामने वाले के असद् व्यवहार से होने वाली मानसिक व्यथा को आप यह सोचकर दूर करे कि इसमें उसका अहित होगा या नहीं, कितु मेरा अहित तो होगा ही। अपने बडप्पन का परिहार करे, यदि आप ऐसा करते हैं तो निश्चित ही आपके जीवन मे मैत्री का अवतरण होगा।

जैन शास्त्रो में कहा है—आपने कोई भी बुरा काम किया है, पापाचरण किया है, किसी के साथ क्रोध या झगडा किया है, तो तुरन्त उससे क्षमायाचना करलो। मन का क्रोध, भावो की उग्रता तथा विचारों की कटुता को तुरन्त दूर कर दो। कभी भी वैर की गांठ मत बांधो। वैर की गांठ मन की शांतिधारा में रूकावट पैदा करती है। पाप का जख्म यदि जल्दी नहीं भरा तो नासूर बन जाता है। इसलिए घावो की तुरन्त महल्म पट्टी करो, तुरन्त चिकित्सा करो।

भगवान् महावीर ने साधुओ को निर्देश करते हुए कहा है कि—परस्पर कोई कटुता उत्पन्न हो तो भोजन करने से पहले ही उसे समाप्त कर दो। बृहत्कल्पसूत्र मे बताया है—

“भिक्षू य अहिगरणं कट्टु ते अहिगणे अविओसइत्ता नो से कप्पइ गाहावइ कुले भत्ताए वा पाणाए वा निक्खमित्तए।”

हे भिक्षुओ ! यदि किसी कारणवश किसी से कलह हो गया हो तो उससे तुरन्त क्षमायाचना करलो, उस कलह की शांति करलो, पाप की शुद्धि

की पहली पहिचान है—शांति और मैत्रीमय मानस का होना। जिसके मन में प्राणीमात्र के प्रति मैत्री दृष्टि नहीं है तो वह सम्यग्दृष्टि भी नहीं है।

इस दृष्टि से जैन परम्परा में क्षमा याचना को एक आध्यात्मिक गौरव प्राप्त है। इसलिए देवसी-रायसी प्रतिक्रमण के अतिरिक्त पाक्षिक, चातुर्मासिक एवं सांवत्सरिक प्रतिक्रमण को विशेष महत्त्व दिया है। जहाँ साधु के लिए तो यह अनिवार्य है कि "कोई गलती हो जाय तो क्षमायाचना किये बिना मुँह में अन्न-जल भी ग्रहण नहीं करे।" यदि ऐसा नहीं कर पा रहा है तो पाक्षिक पर्व पर तो उसे क्षमा याचना कर लेना जरूरी ही है यदि ऐसा नहीं करता है तो उसके साधुत्व में सशय पैदा हो जाता है। इसी तरह 12 व्रतधारी श्रावक चातुर्मासिक पर्व पर भी गलती की क्षमायाचना नहीं मांगता है तो उसके श्रावकत्व को खतरा पैदा हो जाता है। यदि सम्यग्दृष्टि आत्मा 12 महिने में सांवत्सरी जैसे महापर्व पर भी अपने वैमनस्य की गाँठ को नहीं है तो उसका सम्यक्त्व ही धूमिल हो जाता है। इसीलिए इन पर्वों पर क्षमायाचना का विशेष महत्त्व है।

सांवत्सरी का संदेश आज हमें जगा रहा है कि वर्ष भर में जब भी जहाँ भी जाने-अनजाने, एकान्त में या प्रकट में, आपसे कुछ भी पाप हो गया हो, किसी के साथ द्वेष-विद्वेष हो गया हो तो कटुता या संघर्ष की चिनगारी उठी हो, मनोमालिन्य की स्थिति बन गई हो तो आज बालक की तरह सरल मन होकर उन गाँठों को खोल दो, पापों को स्वीकार करो, उन पापों की निन्दा करो और उनसे छुटकारा पाने हेतु प्रायश्चित्त कर लो, क्षमा माँग लो। चूँकि मन की गाँठें बहुत खतरनाक होती हैं। वह मन को अशांत, बैचेन, भयभीत, कुंठाग्रस्त बना देती हैं, फिर धीरे-धीरे शरीर को भी रोगी अशक्त, अपाहिज बना देती हैं।

आज के मनोवैज्ञानिक डॉक्टरों का कहना है कि तन का हर रोग मन की गुत्थी से पैदा होता है। गुप्त पापों के कारण ऐसी मानसिक ग्रंथियाँ बनती हैं, जिसके कारण अनेक भयंकर बीमारियों से इन्सान ग्रस्त हो जाता है। पेट का अल्सर, कैंसर की गाँठें, रसौली, पागलपन, उच्च रक्तचाप जैसी बीमारियाँ शारीरिक नहीं मानसिक ग्रंथियों का परिणाम हैं। जिनकी चिकित्सा दवाओं से या इंजेक्शन से संभव नहीं है केवल उन पापों का प्रायश्चित्त उनका प्रगटीकरण और परिशोधन करने पर ही उन बीमारियों से छुटकारा



क्षमा-पर्व

क्षमा एक अमृत है। यह जिसके पास होता है, वह कटुता के जहर को धोकर स्वयं अमृत बन जाता है। जैन धर्म में क्षमा का गौरव पूरी गुरुता के साथ उद्गीत है। धर्म के चार दरवाजो में पहला द्वार क्षमा है। इस द्वार में प्रवेश किए बिना कोई भी व्यक्ति मोक्ष के महापथ पर आगे नहीं बढ़ सकता। दस प्रकार के श्रमण धर्मों में पहला धर्म क्षमा है। क्षमा जीवन का तेज है, ओज है। क्षमा ब्रह्म है, सत्य है। क्षमा ही तपस्वियों का रूप है। इसलिए क्षमा-धर्म का विकास अपेक्षित है।

क्षमापना, क्षमायाचना और खमतखामणा—ये तीनों शब्द क्षमा-धर्म की परिक्रमा करते हैं। अपनी भूल के लिए क्षमा मांगना और औरों की भूल के लिए क्षमा करना—इन दोनों का समन्वित रूप है—“खमत-खामणा”।

एक राजकन्या ने सकल्प किया कि—“जो व्यक्ति उबलते हुए तेल के कड़ाह में स्नान करेगा, मैं उसके साथ शादी करूंगी।”

राजकुमारी गुणज्ञ, रूप सम्पन्न, शील सम्पन्न एवं सभी तरह की कलाओं में प्रवीण थी। उसकी ख्याति दूर-दूर तक फैली हुई थी। अनेक राजकुमारों ने उसकी ख्याति सुनकर शादी का प्रस्ताव भेजा। परन्तु उसका संकल्प बाधक बन रहा था। उबलते हुए तेल के कड़ाह में स्नान करने का अर्थ था मौत से मुकाबला करना। मरना कौन चाहेगा। बात टलती गई।

एक युवा राजकुमार को किसी विशिष्ट ज्ञानी से यह बात ज्ञात हुई कि “यदि उबलते हुए तेल के कड़ाह में दो रत्ती बावना चन्दन डाल दिया जाय तो उबलता हुआ तेल का कड़ाह प्रभाव हीन हो जाता है। राजकुमार ने बावना चन्दन मगवाया और राजकुमारी की चुनौति स्वीकार कर ली। जब चहुं ओर यह सूचना पहुंची कि अमुक राजकुमार ने राजकुमारी की चुनौती स्वीकार कर ली है तो हजारों की तादाद में लोग अपना आवश्यक कार्य छोड़कर राजमहल की ओर आने लगे। देखते-देखते अच्छी भीड़ इकट्ठी हो गई। राजमहल के

संतों की अमृत प्रवचन धारा निरन्तर प्रवाहित हो रही थी। कल्याणमल जी धर्म के पुजारी थे। प्रतिदिन यथासमय प्रवचन में पहुंचते थे। उनका खुला सिर देखकर संत रोज सोचते कि क्या बात है, इतना धर्मनिष्ठ श्रावक मर्यादा का उल्लंघन इस तरह क्यों कर रहा है ? यह सिर क्यों खुला रखता है ? एक बार रात में प्रतिक्रमण के बाद जब कल्याणमलजी अकेले ही रह गये, सभी चले गये, तब बड़े संत ने कल्याणमलजी को बुलाकर पूछा—आप बड़े श्रावक हैं, राजा के मंत्री हैं, फिर यह मर्यादा का अतिक्रमण कैसे ? वे भी सुझा श्रावक थे, बोले—गुरुदेव ! आपसे क्या छिपाना। मेरी प्रतिज्ञा है—“सहस्रमलजी के प्राणों का घात न कर दूं, तब तक साफा नहीं बांधूंगा।” गुरुदेव ने उसके वैर की बात सुनकर अनेक प्रकार से उन्हें समझाया। कहा कि “इस प्रकार का चिंतन मिथ्यात्व दशा में पहुंचाने वाला है।” पर कल्याणमलजी पर किंचित् भी असर नहीं हुआ। व्याख्यान में भी भिन्न-भिन्न प्रसंगों से समझाया पर उत्तर यही आया कि “मैं उनसे खमतखामणा नहीं कर सकता। मेरे भीतर मैं भारी चुभन है। बिना बदला लिये यह मन शांत नहीं होगा।”

देखिए—स्वधर्मी—वात्सल्य के स्थान पर वे खून के प्यासे बने हुए हैं। उनकी तलवार मौका देख रही है, अपना बदला चुकाने हेतु। पर कभी खून से सना कपडा खून से साफ हो सकता है क्या ? वैर परम्परा बढ़ती रही। कोशिश की गई पर सफलता नहीं मिली।

इधर श्रावण शुक्ला पंचमी—मासखमण के घर का दिन आया। उस दिन सभी धर्मप्रेमी आत्माएँ विशेष आराधना की दृष्टि से तप-त्याग पौषधादि अनुष्ठान में रत थी। कल्याणमल जी ने भी उस दिन पौषध किया था और उपाश्रय में ही विश्राम कर रहे थे। सहस्रमलजी ने पौषध नहीं किया, घर पर ही सोये थे। रात्रि के लगभग 1 30 बजे उनकी नींद खुली और फिर नींद नहीं आई। चिन्तन करते-करते बात ध्यान में आई कि—“आज मासखमण के घर का दिन है। कुछ प्राप्त करना चाहिए। गुरु भगवन्तो के चरणों में पहुंचूं और कुछ प्राप्त कर लू। उसी समय उठे और घर से चलकर उपाश्रय में आये। देखा कि गुरुदेव ध्यान कर रहे हैं। उनके सन्मुख जाकर बैठ गये। ज्योंहि गुरुदेव का ध्यान पूर्ण हुआ, अपने सन्मुख किसी को दैठा देख कर पूछा—कौन ? उत्तर मिला—सहस्रमल।

अभी इतनी रात्रि में यहाँ कैसे आना हुआ ? "गुरुदेव ! अचानक नींद खुल गई। सोचा—आज मासखमण के घर का दिन है। गुरुदेव के चरणों में जाकर कुछ प्राप्त कर लूँ।"

गुरुदेव गंभीर हो गये। बोले—“सहस्त्रमलजी ! आपके सिर पर नंगी तलवार लटक रही है। अतः आपको असमय में घर से नहीं निकलना चाहिए।”

गुरुदेव ! आप यह क्या फरमा रहे हैं ? “हकीकत कह रहा हूँ।” किसी का अपघात न हो, इसलिए सारी बात स्पष्ट रूप से कह दी। इधर पौषध में स्थित कल्याणमल जी ने सारी बात सुन ली। उनका आक्रोश अत्यधिक बढ़ गया। पौषध पूर्ण कर गुरुदेव को ऊलजलूल, जो मुँह में आया, बहुत सुनाया और फिर घर आ गये। अब कल्याणमलजी के दो शत्रु हो गये। गुरुदेव ने मेरी गुप्त बात क्यों प्रकट कर दी ? मेरी सारी योजना ही विफल कर दी। एक गाँठ और लग गई। अब उनका धर्मस्थानक में आना भी बंद हो गया। गुरुदेव को वंदना करना बंद कर दिया।

जब गुरु के साथ वैर बाध लिया तो गणमान्य व्यक्तियों ने उन्हें ऐसा नहीं करने के लिए बहुत समझाया। कहा कि—“कल्याणमलजी ! संतो की आशातना मत करो। पर्वत से माथा टकराये तो खून आये बिना नहीं रहता। यदि कदाचित् खून न भी आये पर संत महापुरुषों की आशातना निश्चित क्षति पहुंचाने वाली होती है।”

दशवैकालिक सूत्र का नौवा अध्यायन गुरु-आशातना के दुष्परिणाम बता रहा है—“देवयोग से सिंह के मुँह में हाथ डालने या अग्नि में कूदने पर, सिंह न भी मारे या अग्नि न भी जलावे किन्तु गुरु की आशातना करने वाले को कभी मोक्ष नहीं मिलता है।”

“न यावि मोक्खो गुरु हीलणाए”

चाहे कितनी ही साधना क्यों न करलो, गुरु की आशातना की गई तो वह साधना मोक्ष के लिए कारगर नहीं होगी।

सभी ने मिलकर कल्याणमलजी को बहुत समझाया पर उन्होंने वैर की गाँठ दृढ़तापूर्वक पकड़ रखी थी।

कल्याणमलजी ने गुरु से वैर बाँधा था। इस बात का फायदा उठाने

के लिए अन्य मत के संभ्रात लोग कल्याणमलजी को अपने धर्म में लाने की कोशिश करने लगे। परन्तु कल्याणमलजी ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि—“भूखा शेर कभी घास नहीं खाता है।” सच्चा तो जिनशासन ही है। अमुक व्यक्ति के साथ मेरी शत्रुता है, धर्म के साथ नहीं। मैं शरीर को छोड़ सकता हूँ, पर धर्म प्रज्ञप्ति को नहीं।” “चइत्तु देहं न तु धम्मसासणं” मैं आपके धर्म को स्वीकार नहीं कर सकता हूँ। बिचारे वे व्यक्ति मौन हो गये। जब संत ने सुना तो वे कल्याणमलजी की दृढ श्रद्धा से बहुत प्रसन्न हुए और उनके पास जाकर क्षमायाचना करने का दृढ निश्चय कर लिया।

थोड़े दिन के बाद जब पर्युषण के पवित्र दिन आये संत देख रहे थे कि इन पावन दिनों में तो कल्याणमलजी प्रवचन सुनने आएं, पर नहीं आये। उन्होंने स्थानक में जाना छोड़ दिया था पर धर्म नहीं छोड़ा। घर पर ही सामायिक, उपवास, पौषध, संवरादि करते थे। देखते-देखते संवत्सरी भी आ गई, प्रवचन, दोपहर की आलोचना सब कुछ हो गये, फिर भी श्रावक जी नहीं आये। मुनि ने विचार किया—“मुझे प्रतिक्रमण करना है।” झोली ली और चल पड़े कल्याणमलजी के घर की तरफ, पहुंचे उनके घर पर। बच्चों ने मां को आवाज लगाई—“माँ ! महाराज आये है।” कल्याणमलजी की पत्नी बाहर आई। बोली—“पधारो महाराज !” महाराज अन्दर आये। कल्याणमलजी अपनी पौषधशाला में पौषध की अवस्था में स्वाध्याय कर रहे थे। देखा कि—“संत आये हैं, दरवाजा बंद कर लिया और बोले—“मैं इन संत का मुँह भी नहीं देखना चाहता हूँ।”

सामायिक पौषध और स्वाध्याय, फिर भी भीतर में जो वैर की गाठ पडी हुई है, उसे खोलने को तत्पर नहीं।

पत्नी पूछ रही है—महाराज ! आपके अभी पधारने का प्रयोजन ?

संत ने कहा—“कल्याणमलजी से मिलना है।” कल्याणमलजी कहाँ है ?

खिडकी खुली थी, उनका बच्चा खिडकी से अन्दर गया और अन्दर जाकर दरवाजा खोल दिया। कल्याणमलजी के तो कषाय समुद्घात की स्थिति बनी हुई थी। भयंकर क्रोध से सारा शरीर प्रकम्पित हो रहा था। न खड़े हुए और न ही सत की तरफ आँख उठाकर देखा।

सत खडे है, देख रहे है, कल्याणमलजी की क्रोध भरी स्थिति को, अपने अपमान का किचित् मात्र भी ख्याल न करते हुए वे महापुरुष सबोधन करते हैं—“देवानुप्रिय ! श्रावण शुक्ला पचमी की रात्रि मे जो मेरे निमित्त से आपको ठेस पहुंची, मैं सवत्सरी प्रतिक्रमण करने का इच्छुक हूँ। प्रतिक्रमण के बाद रात्रि को नहीं आ सकता, अत प्रतिक्रमण के पूर्व ही आत्म-विशुद्धि हेतु आया हूँ। अणगार धर्म को विशुद्ध रखने हेतु क्षमायाचना करता हूँ। आशा करता हूँ कि तुम उदार हृदय से मुझे अवश्य क्षमा कर दोगे। मेरे कोई अन्यथा भाव नहीं थे, सहस्रमल की हत्या न हो जाय, इसीलिए सहज-भाव से उन्हे सावधानी दिलायी थी। जिससे आपको ठेस पहुंची, मुझे क्षमा कर दो। क्षमा लिये बिना मैं संवत्सरी प्रतिक्रमण करने का अधिकारी नहीं हूँ।”

देखिए, एक साधु श्रावक से क्षमा मांग रहा है। आगम-वाणी साक्षी है—गौतम स्वामी ने आनंद श्रावक से क्षमा मागी थी। क्षमा मागना वीरो का काम है और क्षमा करना भी। महापुरुष क्षमा माग रहे है। कल्याणमलजी मौनपूर्वक सुन रहे है। ज्योहि सत की बात पूरी हुई कल्याणमलजी फफक-फफक कर रो पडे। चरणो मे गिर पडे।

भगवन् ! अपराध आपका नहीं, मेरा है। आपने मेरे भीतर दीपक को जलाने का प्रयत्न किया है। मेरे मन मे टीस थी, आज आपके अमृत-वचनो से दूर हो गई। भगवन् ! मुझ पापी को क्षमा कर दो। भीतर का पूरा दर्द कल्याणमलजी का अश्रुओ के रूप मे बह रहा है। पैर पकड लिये। पश्चात्ताप के अश्रुओ से अपने अन्तर का प्रक्षालन कर रहे है। गुरुदेव खडे है। कल्याणमल जी पूछ रहे है—गुरुदेव ! सहस्रमल कहाँ है ?

सत ने कहा—वह धर्मस्थानक मे पौषधव्रत मे स्थित है।

गुरुदेव ! मैं भी आपके साथ चलना चाहता हूँ।

अहासुह ! गुरु की आज्ञा प्राप्त कर कल्याणमलजी गुरुदेव के साथ धर्म स्थानक मे आये। तीन साल से सहस्रमलजी से क्षमायाचना नहीं की थी। आज सीधे पहुंचे सहस्रमलजी के पास, उनके चरणों मे झुक गये और कहने लगे—“मैं अपराधी हूँ, हत्यारा हूँ, मुझे आप क्षमा करना।”

सहस्रमलजी ने कहा—महामत्रीवर ! आप क्या कर रहे हो ? और दोनो एक-दूसरे के गले मिले। राम-भरत सा मिलन देखकर धर्मस्थानक मे



रहे है।”

व्याख्यान के दौरान आचार्य श्रीजी ने इस विषयक मीमासा करते हुए फरमाया—हम “खामेमि सव्वे जीवा” की पाटी प्रतिक्रमण मे बोलते है। एक तरफ तो सब जीवो से क्षमा चाहते है और दूसरी तरफ उसी क्षण उनको मार रहे है तो यह कैसी क्षमा ? यह तो कुंभकार वाला मिच्छामि दुक्कड होगा।

घडा तो फिर भी निर्जीव है पर यहाँ तो साक्षात् ध्वनिवर्धक यत्र से तेउकाय के जीवों की हिंसा होती है, फिर माईक मे बोलकर हम सभी को अभयदान, क्षमादान कैसे दे पायेगे ? मानवता एवं नैतिकता के सरक्षण हेतु हमे प्रतिज्ञा मे मौजूद रहना अति आवश्यक है। ध्वनिवर्धक यत्र के विषय में आयुर्वेद संस्थान ने शोध किया है कि इससे भी प्रदूषण होता है और वह प्रदूषण बडा घातक होता है। उसका यह प्रभाव होगा कि “आने वाली 7वीं पीढी बहरी होगी। क्या आने वाली पीढी को यही उपहार देगे हम ?”

आज लोग तर्क देते है कि—“युग बदल रहा है, युग के अनुसार परिवर्तन होना चाहिए। इत्यादि लेकिन ये थोथी तर्क है। “युग बदला किसने ?” इंसान ने ही तो ? और युग बदल गया तो क्या आँख, नाक, कान का स्थान भी बदल गया क्या ?

हम क्षमा की बात कर रहे है ? सयतिराजा गुरु-चरणो मे खडे अभय मांग रहे है। मुनि कह रहे हैं—राजन् ! तुम अभय चाहते हो तो सभी को अभयदान दो, क्षमादान दो।

हमें प्रतिक्रमण इस तरह करना है कि हमारी आत्मा भावित बने, हृदय गुण सिधु बने। अपने भूले भटके मन को सभाले। आक्रोश, किसी दूसरे का नहीं, स्वय का हनन करता है। यह सोचकर मन के रोष का निवारण करे तो आत्महित-परहित दोनो एक साथ सध जाते है।

क्षमा का आदान-प्रदान सही रूप में हुआ या नहीं, इसका मापदड दूसरा नहीं, व्यक्ति स्वयं होता है। खमतखामणा करने के बाद मन हल्का हो जाय। चित्त आह्लाद से भर जाए और भीतर का शल्य निकल जाय तो जान लेना चाहिए कि खमतखामणा हो गया। ऐसा करने वाला व्यक्ति सबका मित्र बन जाता है। दूसरा कोई उसका मित्र बने या नहीं बने, उसके मन मे किसी

किया। आने का प्रयोजन और परिचय पूछने पर उसने बताया कि—
 “राक्षसपति ! मैं नलकुबेर की पत्नी उपरम्भा की निजी दासी हूँ। उनके हृदय में आपकी शूरवीरता एवं पराक्रम के बारे में सुनकर आपके प्रति अनुराग उत्पन्न हो गया, उन्होंने आपको देने के लिए यह पत्र भेजा है।’ पत्र में उन्होंने लिखा है कि आप मुझे अपनी रानी बनायें तो मैं आपको ऐसा मंत्र बताऊंगी, जिससे अग्नि किला शीतलता में बदल जायेगा।

रावण कुछ बोले उससे पूर्व ही विभीषण ने कह दिया—ऐसा ही होगा। दासी प्रसन्न मन चली गई। इधर रावण विभीषण पर बरस पड़े—“अरे तुमने यह कुल विरुद्ध कार्य कैसे स्वीकार कर लिया ? हमारे कुल में किसी ने भी परस्त्री का मन में भी ध्यान नहीं किया। तुमने आज राक्षस कुल को कलंकित कर दिया। मुझे भीख मांगकर खाना पड़े, लंका छोड़नी पड़े और जंगलों में भी रहना पड़े तो मुझे स्वीकार है। पर मैं चारित्र्य बेचने को तैयार नहीं हूँ।” यह था रावण का सयम और चारित्र्य के प्रति निष्ठा। विभीषण ने विनम्रतापूर्वक कहा—मेरी बात आप शांतचित्त होकर सुन लीजिए—शुद्ध मन वालों के लिए धर्म विरुद्ध वचन नीति होते हैं, अधर्म नहीं। राक्षस कुल को कलंक तो अधर्म सेवन से लगेगा। पहले आप अपना कार्य सिद्ध कीजिए, फिर उसके बाद उपरम्भा को संबोध दीजिए। अधर्म सेवन से इन्कार कर दीजियेगा। यह तो आपके हाथ की बात है। कोई बलात्कार थोड़े ही कर लेगी वह। रावण का कोप शांत हो गया और विभीषण की बात स्वीकार कर ली। तब तक कामांध बनी महारानी उपरम्भा वहाँ आ पहुँची और आसालिका विद्या रावण को सीखा दी और अनेक व्यतर देवों से रक्षित अमोघ अस्त्र भी दिये। रावण ने अग्नि शांत की और विभीषण ने नल कुबेर को युद्ध करके बंदी बना लिया। वहाँ से रावण को सुर-असुरों से अजेय सुदर्शन चक्र भी प्राप्त हो गया। अब उपरम्भा ने अपनी इच्छा पूर्ति की अभिलाषा प्रकट की। रावण ने नीतिपूर्ण गंभीर शब्दों में समझाया—“देवी ! तुम तो मेरी गुरु हो, माता हो।”

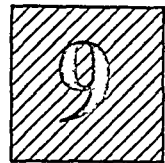
रानी ने उपालम्भ देते हुए कहा—“दशानन ! तुम शक्ति पाकर चाल चल रहे हो। वचन से मुकर रहे हो।”

दशानन ने मधुर शब्दों में कहा—“रानी ! जब मैंने स्वीकृति दी, तब तुम्हारा मेरा कोई संबंध नहीं था। पर अब तुमने मुझे विद्या सिखाई है, अतः तुम मेरी गुरु बन गई हो। मैं तुम्हारा शिष्य बन गया हूँ। गुरु के साथ काम-



थे, अतः अपने पराक्रम से तीनो भाइयों को मार देते हैं। पुत्र, पति एवं दोनो देवर, इनके मृत कलवेर के साथ शूर्पणखा उदास बैठी थी, तभी अचानक उसने लक्ष्मण की ओर देखा और उसके रूप पर मुग्ध हो गई तथा बोली- 'मैं आपसे विवाह करना चाहती हूँ, आप मुझे स्वीकार कीजिए।' लक्ष्मण ने कहा- 'यह आप क्या कह रही हैं ?' इस दुःख की घडी में आप विवाह की बात कर रही है, मैं तो आपका दुश्मन हूँ। दुश्मन के प्रति आपके मन में ये भाव कैसे ? और भी आप तो मेरी माता एवं भाभी के समान है। मेरे बड़े भैया यही रहते हैं, यदि आपको विवाह करना ही है तो उनसे प्रार्थन कीजिए। मैं आपसे विवाह नहीं कर सकता।" शूर्पणखा अपनी इच्छा पूर्ण न होने पर क्रोधावेश में प्रतिशोध की भावना से रावण के पास पहुँची। उस कुमति रूप शूर्पणखा ने सुमति रूपी सीता की बहुत प्रशंसा की और कहा- "भैया ! तेरे अन्तपुर में भाभी मन्दोदरी कितनी ही सुन्दर है, पर सीता जैसी नहीं है। वह हो तो तुम्हारा अन्त-पुर सुशोभित हो जाये। बस इतना सा कथन पर्याप्त था। पूर्व भव के राग संस्कार जागृत हो उठे। सीता को अपने महल में लाने का दृढ संकल्प किया और जोगी का वेष बनाकर कपट से सीताजी को उठाकर लंका में ले गया। इस प्रकार कुमति रूपी शूर्पणखा ने मिथ्यात्व मोहनीय रूपी रावण को उकसाया, सारा परिवार का उच्छेद कराया। युद्ध में रावण की मृत्यु हुई, इसके साथ ही सारी लंका नष्ट हो गई। हमारी आध्यात्मिक नगरी में भी ये शत्रु इसी कदर हमारी नगरी को नष्ट करने पर तुले हुए हैं। आज इस दिवस से प्रेरणा लेकर इन समस्त शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने के लिए हमें प्रशस्त कदम उठाना है। एतदर्थ महाराज दशरथ के आध्यात्मिक परिवार का समावेश हमारे जीवन में करना होगा। धर्मरूपी राम दशविद्य यति धर्म रूपी दशरथ एवं संवर रूपी कौशल्या से जन्म को प्राप्त कर सत्य रूपी लक्ष्मण के साथ हमारे जीवन में प्रवेश पा जाये। साथ ही सुमति रूपी सीता का सहवास मिल जाये तो धर्म सत्य और सुमति से मोक्ष प्राप्त होते कोई देर नहीं लगेगी।





प्रकाश-पर्व — दीपमालिका

भारतीय सस्कृति मे पर्वो, त्योहारो की एक महान् परम्परा रही है। इस परम्परा का अपना इतिहास है, महत्त्व है और उपयोग है। कभी-कभी इसका इतिहास समय की सघन परतो के नीचे दब जाता है, फिर भी पर्व का महत्त्व कम नहीं होता। परम्परा एक ऐसी कडी है जो उसे लोक पर्व के रूप में प्रतिष्ठित कर देती है।

दीपावली एक ऐसा पर्व है, जो अन्य पर्वों से विलक्षण है और लोक-जीवन को खुशियों से सराबोर कर देता है। हमारे परम-पिता परमेश्वर प्रभु महावीर कार्तिक कृष्णा अमावस्या की पिछली रात्रि को मोक्ष पधारे थे और प्रभु के प्रथम शिष्य गणधर गौतम स्वामी ने केवलज्ञान का दीपक प्रज्वलित किया। इसलिए दीपमालिका के ये दिन काफी महत्त्वपूर्ण है। धनतेरस, रूप चउदस, दिवाली, नया वर्ष और भाईदूज—इस प्रकार पच दिवसीय यह त्यौहार है।

धन-तेरस के दिन भरत-चक्रवर्ती को छह खड का राजा बनाने के लिए उनकी आयुधशाला मे चक्ररत्न उत्पन्न हुआ था। ऋषभदेव को केवलज्ञान प्राप्त हुआ इसकी बधाई भी भरत महाराज को धन-तेरस के दिन ही मिली थी और पुत्र रत्न की बधाई भी मिली थी। रूप-चउदस के दिन रामचन्द्र जी ने रावण की आसुरी प्रकृति पर विजय प्राप्त कर अयोध्या नगरी में प्रवेश किया था। दिवाली की रात मे प्रभु महावीर ने निर्वाण और गौतम स्वामी ने केवलज्ञान पाया था। अत नववर्ष कार्तिक शुक्ला एकम को भगवान् का निर्वाण महोत्सव एवं गौतम स्वामी का केवलज्ञान महोत्सव मनाने के लिए इन्द्र, देव और मनुष्य आये थे। इसलिए पावापुरी मे लोग समा नहीं रहे थे। एक तरफ गौतम स्वामी के केवलज्ञान महोत्सव का आनंद था तो दूसरी तरफ भगवान् महावीर के मोक्ष पधारने से भरत क्षेत्र मे तीर्थकर का वियोग हुआ

से सुख भोगता था। पत्नियों के झगड़े से अलग होना पड़ा। अब मुझे बहुत पश्चात्ताप है। तुम्हारे से अलग होने के बाद मेरी यह स्थिति हुई कि आज तीन दिन हुए, घर के सभी सदस्य भूखे हैं। आज दिवाली का दिन है। बालक पडौंसियों के यहाँ मिठाइयाँ एवं बालकों को अच्छे कपड़े पहिने हुए देखकर आए और घर आकर मिठाई और अच्छे कपड़े की मांग कर रहे हैं। रो रहे हैं। उनका रोना भैया मुझसे सहन नहीं होता। बचपन में मैं कितनी रईसी में रहा और आज मेरे बच्चों का यह हाल। यह कहते-कहते छोटा भाई मूर्च्छा खाकर गादी पर गिर गया।

बड़े भाई जिसकी आंखों से अविरल अश्रुधारा प्रवाहित हो रही थी। छोटे भाई का दुःखड़ा सुनते-सुनते ज्योंहि देखा कि छोटा भाई बेहोश होकर गिर पड़ा। जल्दी से ठंडी हवा करता है, ठंडे पानी के छींटे डालकर उसे होश दिलाता है और कहता है—भैया ! देखो मैं कितना पापी, इतने दिन हो गये, व्यापार में उलझा तुम्हारी सुध भी नहीं ले सका। लो भैया ! लो रुपये ले जाओ और यथाशीघ्र बच्चों के अरमान पूरे करो। मेरे भाई ! रोओ मत। कर्मों का खेल बड़ा विचित्र है।

ऐसा कहते हुए बड़े भाई ने ज्योंहि जेब में हाथ डाला, योग की बात, भवितव्यता, फक्त 5 रुपये का नोट निकला। हमेशा जिनकी जेबें, दो हजार, चार हजार रुपयों की गड़्डियों से भरी रहती थी, वहाँ आज जेब खाली है। दिवाली का दिन था, दुकान में बहुत ग्राहक बैठे हुए थे। अतः मजबूर बना बड़ा भाई कहता है—भैया ! आज सब नोट घर पर तिजोरी में रख कर आया हूँ। लो मैं तुमको चिट्ठी लिखकर देता हूँ। इसे लेकर घर पर जाओ। भाभी से कहना, वे तुम्हें 5 हजार रुपये दे देगी। देखो भैया ! जीमकर जाना, भूखे मत जाना। मैं स्वयं तुम्हारे साथ चलता, पर क्या करूँ ? इन ग्राहकों को निपटाना है। तुम घर चलो, मैं भी अभी आधे घंटे में सभी को निपटाकर आता हूँ।

छोटा भाई बड़े भाई की चिट्ठी लेकर घर जाता है। भाभी ने दूर से फटेहाल देवर जी को आते देखा, तुरन्त समझ गई कि— “ये कुछ न कुछ लेने के लिए आ रहे हैं। एक बार इनको दे देंगे तो फिर बार-बार आयेंगे, अतः मुझे सावधान हो जाना है।”

इस जगह यदि देवर श्रीमंत हो तो भाभी ऐसा विचार करे ? अरे, वह तो उसे अत्यन्त प्रेम से बुलायेंगी। आज दुनियाँ में पैसे का

तुम्हारी चिड़ी लेकर मैं भाभी के पास गया था। मेरे अशुभ कर्मों का उदय, भाभी ने मुझे कुछ भी नहीं दिया। भाभी की चरण-रज मस्तक पर चढाकर लौट आया।”

यह पत्र पढकर बड़े भाई को गहरा आघात लगा। यह शब्द उसके मुह से उच्चरित हुए कि—“मेरी तिजौरी मे भले ही लाखो का धन है, पर वह क्या काम का ? मेरे भाई भाभी गरीबी से घबराकर आत्महत्या कर गये। इस लक्ष्मी के पीछे पागल बना। मैंने इनकी सुध भी न ली। अब मेरा प्यारा भाई मुझे कहाँ मिलेगा ? फूट-फूटकर रुदन करने लगा। आखिर रोये तो भी कब तक ? अब पश्चाताप करने से क्या होने वाला है। उठा और भाई व भाभी की अंतिम अग्नि सस्कार क्रिया सम्पन्न करवाई। तीनों बच्चों को लेकर अपने घर आया। पत्नी के स्वभाव से परिचित तो था ही, अत आते ही पत्नी से स्पष्ट कहा—इन बच्चों को अपने बच्चे के बराबर संभालकर स्नेह दे सकती हो तो इस घर मे रहो वरना तुम्हारी मुझे कोई जरूरत नहीं है। आज तुम्हारे ही कारण—“मैं अपने प्यारे भाई भाभी को खो बैठा।”

वह भी चतुर थी, समझ गई, अब इस घर मे मेरी दाल गलने वाली नहीं है। रहना है यही, पर अब पति के कहे अनुसार चलना होगा। वह बच्चो को स्नेह के साथ रख रही है पर माँ का प्यार थोडे ही दे सकती है। हर दिवाली आती है, बच्चे अपने माँ-बाप की याद मे रोते है।

इस सत्य घटना से शिक्षा लेनी है। धन मिला है तो इसका सदुपयोग करना चाहिए। लक्ष्मी-पूजन करने से लक्ष्मी नहीं मिलती है वरन् लक्ष्मी का सदुपयोग करने से ही लक्ष्मी मिलती है।

राजस्थान मे एक जैन भाई जिसका व्यापार बहुत अच्छा चलता था। जब उसने साधर्मी वात्सल्य का महत्त्व सुना तो निश्चय किया कि—“मैं इस समय समर्थ हूँ। यह लक्ष्मी तो चंचला है, आज है, कल नहीं। अत. मैं अपनी सम्पत्ति से साधर्मी-बंधुओ का सहयोग करू। इस लक्ष्मी का दूसरा नाम दौलत भी है, जो आते समय पीठ पर लात मारती है, जिससे व्यक्ति अभिमान मे ऐठ कर चलता है और जाते वक्त सीने मे लात मारती है, जिससे मनुष्य झुक जाता है। दो लात मारने वाली होने से इसे दौलत कहा जाता है। अत: क्यो न दो लात मारने वाली इस दौलत का सदुपयोग करके दौलत के इस अवगुण से मुक्त हो जाऊं।” उसने मारवाड से 50 परिवारों को क्रमश



दीपों का त्यौहार—इतिहास के परिप्रेक्ष्य में

निर्धूमवर्तिरपवर्जित - तैलपूरः,
 कृत्स्नं जगत्त्रयमिदं प्रकटीकरोषि ।
 गम्यो न जातु मरुतां चलिताचलानां,
 दीपोऽपरस्त्वमसि नाथ ! जगत्प्रकाशः ॥

आचार्य मानतुग आदिनाथ स्तोत्र में ऋषभप्रभु की स्तुति करते हुए कहा है—प्रभो ! आप अमर-दीप है, एक भिन्न ही प्रकार के दीपक है। अन्य दीपको मे बाती से धुआं निकलता है, पर आप तो ऐसे दीपक है, जिसकी बाती निर्धूम है, जिसकी लौ के साथ धुआ नहीं निकलता है। अन्य दीपक तेल के सहयोग से जलते हैं, बिना तेल के बाती नहीं जल सकती पर आप ऐसे दीपक है, जिसमे तेल की आवश्यकता नहीं होती। अन्य दीपक ससीम क्षेत्र में प्रकाश फैलाते हैं, पर आप “कृत्स्नं जगत्त्रयमिदं प्रकटीकरोषी”—तीनो लोकों को प्रकाशित करते हैं। दूसरे दीपक हवा के झोंके में टिक नहीं सकते, बुझ जाते हैं पर प्रभो ! आप “गम्यो न जातु मरुता चलिता चलानाम्”—ऐसे दीपक है, जो पर्वतों को हिला देने वाले झंझावतों से भी प्रकाशित नहीं होते। इसलिए हे जगत्-प्रकाशक ! आप निःसंदेह एक अद्भूत दीपक हैं।

त्रिलोकी नाथ को एक अद्वितीय अनुपम दीपक के रूप में निरूपित किया गया है।

दीपक संसार के लिए बहुत उपयोगी वस्तु है। भीषण, सघन अंधकार को ध्वस्त करने के लिए एक दीपक भी पर्याप्त होता है। इसी दृष्टि से छोटा सा दीपक भी बहुत मांगलिक माना जाता है। वर्तमान युग में प्रकाश के अनेक साधनों के आविष्कृत हो जाने पर भी दीपक तो दीपक ही है। उसकी गरिमा अभी भी पूर्ववत् सुप्रतिष्ठत है।

उसके शरीर में कीड़े पडे हुए हैं, जो बुलबुला रहे हैं, उन कीड़ों की वजह से वह सिंह भी व्याकुल सा दिखाई देता था।'

6. गन्द्गी पर उगा हुआ कमल—'भगवन्, छठे स्वप्न में मैंने एक कमल देखा। उस कमल का विचित्र हाल था कि वह सरोवर के बजाय उकरड़ी (गन्द्गी डालने की जगह) पर उगा हुआ था। ऐसी जगह कमल उगता नहीं, फिर यह कैसा स्वप्न था।'

7. बीज बोने की विचित्र प्रवृत्ति—'भगवन्, सातवे स्वप्न मे मैंने कुछ किसानो को बीज बोते हुए देखा। आश्चर्य की बात यह थी कि वे बीज वहीं बो रहे थे, जहाँ ऊसर जमीन थी, जहाँ अंकुर भी नहीं निकल सके, वहाँ बीज बोये जा रहे थे। दूसरी तरफ उपजाई भूमि पर ऐसे बीज बोये जा रहे थे, जिनमें उगने की योग्यता ही नहीं थी, कारण उनकी नोकें टूटी हुई थी।'

8 उपेक्षित कुंभ कलश—'भगवन्, आठवां स्वप्न एक कुभ-कलश का था। कुंभ कलश तो मांगलिक व मनोरथ पूर्ण करने वाला समझा जाता है किन्तु यह कुंभ-कलश विचित्र ढग से एक कोने मे पडा हुआ था।'

महावीर स्वामी द्वारा स्वप्नों के फल का कथन—

(1) कीचड में धंसा हाथी

महावीर प्रभु ने तब हस्तिपाल के स्वप्नो का फल बताते हुए संकेत दिया . राजा ! तुमने कीचड मे फंसा हुआ जो हाथी स्वप्न मे देखा है, उसका अर्थ यह है कि आने वाले पंचम काल में हाथी के समान कई प्राणी सांसारिक वैभव से युक्त, धार्मिक व निष्ठावान भी होंगे किन्तु क्षणिक सुख में इस तरह मदमस्त हो जायेंगे कि आध्यात्मिक मार्ग को छोड़ कर विषय कषाय के कीचड मे फंसते रहेंगे। पांचों इन्द्रियों के भोग में वे अपने अमूल्य जीवन को नष्ट कर देंगे। कदाचित् कोई सत्संग के प्रसंग से संसार के विषय कषाय रूपी कीचड से बाहर निकल कर दीक्षित भी बनेगे तो कई बाद मे कुसंगति के कारण आन्तरिक रूप से महाव्रतो को तोड देंगे और फिर भी बाहर से साधु कहलाते रहेंगे। इस तरह उत्तम कुल के प्राणी कुसंगति के कारण संयमी जीवन की दशा को विकारपूर्ण बना देंगे। हाथी उत्तमता का प्रतीक होता है किन्तु उसके कीचड मे फसे होने का अर्थ है कि उत्तम कुल के प्राणी अधिकांशत. अपने सुचरित्र से पतित बनेंगे अतः पंचम काल में जीवन की विचार एव

करोड़पति सेठ पर दोनों एक दूसरे का मुह नहीं देखना चाहते थे। एक दिन आचार्य श्री नानेश के व्याख्यान में दोनों भाई प्रवचन सुनने आये, आचार्य श्री जी ने प्रवचन में भ्रात-प्रेम का महत्व बताते हुए फरमाया कि " एक भाई का एक भाई को कितना बड़ा सहारा होता है याद करो, राम-लक्ष्मण को। अभागे हैं, जो भाई-बहिन का मुह देखना नहीं चाहते हैं।" उन महापुरुष की वाणी का ऐसा प्रभाव पड़ा कि दोनों भाई व्याख्यान उठने के बाद एक-दूसरे के घर जाने के लिए सकल्प कर एक-दूसरे के घर की तरफ अपने चरण बढ़ा लेते हैं। परस्पर मिलने के लिए बेताब हैं, दोनों के हृदय परिवर्तित हो चुके हैं। बीच मार्ग में ही दोनों एक दूसरे के आमने-सामने मिल जाते हैं। परस्पर एक दूसरे को बाहों में भर लेते हैं। दोनों ने एक थाली में बैठकर भोजन किया, उन दोनों में इतना घनिष्ठ स्नेह हो गया कि उसके बाद जब भी आचार्य श्री जी की सेवा में पहुँचते तो दोनों साथ-साथ ही जाते थे। खून का रिश्ता आखिर खून का रिश्ता ही होता है। आखिर वह बहिन सुदर्शना अपने भाई नन्दीवर्धन को मना लेती है और उसे भोजन कराती है। तभी से इस दूज को भैया-दूज के नाम से पुकारा जाने लगा। आज उसी परम्परा से बहिन भाई को अपने घर बुलाती है और भोजन कराती हैं। सबधों के जगत में आपसी व्यवहार बहुत महत्व रखते हैं। सबंधों को मधुर बनाये रखने के लिए समझ की जरूरत होती है। नासमझी से सबंधों में कटुता फैल जाती है। दुनिया की राहों में फूलों से अधिक काटे हैं पर आश्चर्य की बात तो यह है कि काटों से ज्यादा फूलों के घाव दुखदायी होते हैं। दूसरों की अपेक्षा अपना ही अपेक्षा असह्य होती है। इसलिए कहा जाता है, सबध बनाये रखना चाहिए। कौनसा सबध कब उपयोगी होगा, कहना कठिन है।

संसार के समस्त संबंधों में नि स्वार्थ और पवित्र सबध अगर कोई है तो भाई-बहिन का सबध है। भाई के लिए बहिन और बहिन के लिए भाई स्नेह के छलकते सरोवर होते हैं। एक सुखी परिवार में जन्मे भाई और बहिन की कहानी इस बात को चरितार्थ कर रही है। बहिन बड़ी थी, भाई छोटा था। भाई-बहिन का परस्पर प्रेम दूध-मिश्रीवत् था। माता-पिता ने सुखी परिवार में अपनी पुत्री का परिणय करवाया, तत्पश्चात् भाई का भी विवाह हुआ। बेटा पराये घर चली गई और घर में बहू आ गई। उसके बाद माता-पिता स्वर्गवासी हो गए। भाई-बहिन का प्रेम संबंध बहुत प्रगाढ़ था। परन्तु

संसार के स्नेह संबंधों के बंधन कब, कहीं और कैसे टूट जाते हैं—समझना मुश्किल है। समग्र संसार स्वार्थ की श्रृंखला से बंधा हुआ है। बहन और भाई पुण्योदय की वजह सुखी थे लेकिन समय सदा एक सा नहीं रहता है। अचानक बहिन के जीवन में तूफान आया। उसके पतिदेव का व्यापार जो जोर-शोर से चल रहा था, अनायास ही इतना अधिक घाटा लगा, सारा धंधा बैठ गया। आज की दुनिया में पैसा ही सर्वस्व है, पैसे की हानि से आदमी को जो आघात किंवा सदमा लगता है, उससे वह टूटसा जाता है। इस बाह्य जगत में जिधर देखें उधर धन का मान-सम्मान है। जब तक पैसा पास है, तब तक सभी आपके संबंधी हैं, पर पैसा पास नहीं है, तो सगे संबंधी भी किनारा कर लेते हैं।

अनुभवियों ने कहा है कि—

“वसु विन नर पशु”

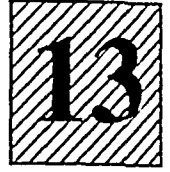
वसु यानी धन है, तो नर है, नहीं तो वह पशु तुल्य है। लेकिन ज्ञानीजन कहते हैं—

“धर्मण हीना पशुभिः समाना”

इन्सान के पास चाहे कितना भी धन-वैभव हो, पर जीवन में यदि धर्म नहीं है, तो वे पशु के समान हैं। इस प्रकार ज्ञानियों की गणित कुछ ओर ही होती है। उनका तो कहना है—धर्मरहित चक्रवर्ती भी दया का पात्र है। फिर भी दुनिया तो पैसे की ही पुजारी है। यहाँ ऐसा ही हुआ। बहिन के यहाँ पापकर्म के उदय से धन, घर-बार आदि सभी नष्ट हो गये और इस आघात को सहन नहीं कर सकने के कारण पति भी थोड़ी सी बीमारी को झेलकर परलोकवासी बन गया। पैसा गया, पति गये और जेठ-जेठानी ने घर से भी बेघर कर दिया। अब दुःखियारी बहिन अपने पुत्र-पुत्री के साथ घर के पास एक छोटी झोंपड़ी बनाकर रहने लगी।

कर्म इन्सान को कैसे-कैसे खेल दिखाता है ? पुण्य समाप्त होता है, तो इंसान कहीं से कहीं पहुँच जाता है। जिस बहिन के पास अपार संपत्ति थी, आज उसी के सिर पर भयंकर दुःख का बोझ आ पड़ा था। बिल्कुल निराधार होकर फूट-फूट कर रो रही है। रोटी के टुकड़े तक के लिए आज मोहताज हो गई है। उसका भाई तो बहुत ही सुखी और सम्पन्न था। बहनोई

की मदद से अपनी इज्जत बचा ली और पत्नी से बोला—देखा, मेरी बहिन को ? बहिन हो तो ऐसी हो। भाभी पश्चाताप के आसू बहाती हुई ननद के चरणों में गिर पड़ती है और अपने अपराधों की क्षमा मागती है। बहिन-भाई के सच्चे प्रेम के प्रति नतमस्तक हो जाती है।



ज्ञान-पंचमी

ज्ञानाराधना का पावन पर्व "ज्ञान-पंचमी" किंवा कार्तिक शुक्ला पचमी तिथि का जैन-परम्परा मे विशिष्ट महत्त्व है। ज्योतिष के अनुसार पचमी पूर्णा तिथि है। पूर्णातिथि को कोई भी शुभकार्य प्रारंभ किया जाता है तो वह सानंदपूर्ण होता है। इतिहासकारों की धारणा है कि प्रभु महावीर के निर्वाण के पश्चात् उनके उत्तराधिकारी आचार्य सुधर्मास्वामी द्वारा इस कार्तिक शुक्ला पचमी को ही श्रुतज्ञान का जो पावन प्रवाह प्रवाहित हुआ, वह आज तक प्रवाहित हो रहा है। ज्ञान-प्रवाह प्रवाहित होने के कारण ही इस पचमी को श्रुत-पचमी या ज्ञान पंचमी नाम दिया गया है। यही कारण है कि आज भी गुरु अपने शिष्यों को नया शास्त्र ज्ञान, स्वाध्याय आदि की वाचनी देते हैं, अथवा कुछ नया ज्ञान कंठस्थ करने की प्रेरणा करते हैं।

इतिहासकार दूसरी बात यह भी बताते हैं कि भगवान् महावीर के निर्वाण के 980 वर्ष पश्चात् उन्हीं के 27वें पट्टधर आर्य देवद्विगणी क्षमाश्रमण ने कार्तिक शुक्ला पंचमी के दिन कंठस्थ चली आ रही श्रुतज्ञान की परम्परा को लिपीबद्ध कर पुस्तकाकार रूप देने का साहसिक एव दूरदर्शी कार्य प्रारंभ किया। इसके पहले वह सम्पूर्ण द्वादशांगी ज्ञान भंडार साधको के उर्वर मस्तिष्क में सुरक्षित रहता था। गुरु के मुख से शिष्य सुनते थे और उसे अपने स्मृतिकोष में सुरक्षित रखते थे। सुरक्षित उस श्रुतज्ञान की वार-वार आवृत्ति करते रहते, अपने शिष्यों को वाचना देते रहते, वार-वार उस ज्ञान के संबंध में चर्चा-विचारणा करते रहते, कभी-कभी गंभीर चिन्तन भी करते थे और श्रोताओं के सन्मुख उस पर व्याख्यान भी करते थे। इस प्रकार स्वाध्याय द्वारा उस श्रुतज्ञान की विशिष्ट आराधना करके परम्परागत ज्ञान की सुरक्षा करते थे, उनके मस्तिष्क में इतना विशाल श्रुत का क्षीरसागर इसलिए सुरक्षित रह सका कि वे बाह्य झंझावातों से अप्रभावित रहते थे, और

का उलटा राक्षस भी बन सकता है। किंतु जो ज्ञान आत्मा के भीतर से प्रकट होता है वही ज्ञान सच्चा एवं आनंददायी होता है।

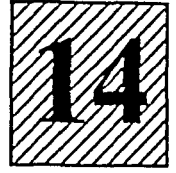
एक संत जिन्हें 12 वर्ष तक "धम्मो-मगल" मुक्किट्टं" एक गाथा याद नहीं हुई। एक चरण याद होता और आगे का चरण याद करते, जितने पिछला चरण भूल जाते। लगन थी, पुरुषार्थ था, पर प्रबल ज्ञानावरणीय कर्म का उदय। कुछ भी याद नहीं होता। गुरु चरणो अर्ज करता है, गुरुदेव ! मुझे ज्ञान नहीं चढता, कोई उपाय बताईये। गुरु कहते हैं—शिष्य, तुम्हें याद नहीं होता है, तो तुम जो ज्ञान-ध्यान करने वाले संत है, उन्हें सहयोग करो, उनकी आहार-पानी, वस्त्र-प्रक्षालन आदि से वैयावच्य कर उन्हें ज्ञान-ध्यान के लिए ज्यादा से ज्यादा समय दो। तुम्हारे कर्म क्षय हो जायेंगे तो फिर तुम्हें भी ज्ञान कठस्थ होने लग जायेगा। विनयपूर्वक वह शिष्य गुरु वचनों को स्वीकार कर आचरण में लाता है। ज्ञानी सतो की सेवा में लग जाता है। जब भी अवकाश मिलता तो उसे यह जिज्ञासा होती कि अब मेरे भी कुछ कर्म क्षय हुए होंगे, अतः अब मुझे भी कुछ ज्ञान कंठस्थ हो जायेगा, ऐसा विचार कर याद करने की चेष्टा करता। एक बार वह याद करने का प्रयास कर रहा था किन्हीं संतों ने हंस दिया—"अरे इतने वर्ष हो गये, अभी तक एक भी गाथा याद नहीं हुई तो अब क्या होगी?" बस इतना सा वाक्य उस संत के लिए कर्म-काष्ठ को जलाने में चिनगारी का कार्य कर गया। उसे इतनी अधिक आत्म-ग्लानि हुई, आत्म-पश्चात्ताप हुआ, स्वयं के कर्मों का निरीक्षण, अनुप्रेक्षा इतनी गहराती गई कि किताब तो हाथ में ही रह गई और भीतर में केवल-ज्ञान की ज्योति जगमगा गई। उधर से संयोगवशात् गुरु का पधारना हुआ। पूछा—क्यों गाथा याद हो गई? शिष्य ने कहा—"गुरुदेव याद हो गई। अगली गाथा की वांचनी दे दूं।" "गुरुदेव ! दे दीजिए।"

ज्योंहि गुरु ने आगे की गाथा की वांचनी दी। शिष्य ने कहा—"गुरुदेव ! याद हो गई, सुन लीजिए।"

गुरु को आश्चर्य। अरे एक गाथा इतने वर्षों में याद नहीं हुई और यह गाथा अभी वांचनी दी और सिर्फ वांचनी सुनकर ही याद हो गई। कहा—सुनाओ।

शिष्य ने एकदम शुद्ध उच्चारण से बिना स्खलित हुए सुना दी।

तब गुरु ने पूछा—आपको कुछ ज्ञान हो गया क्या ?



धर्मवीर क्रांतिकारी लोकाशाह

अमावस्या के बाद पूर्णिमा आती है। ठीक वैसे ही वीर प्रभु की जन्म राशि पर लगे भस्मग्रह की परिसमाप्ति पर वीर लोकाशाह का अवतरण हुआ। वीर निर्वाण सातवीं शताब्दी के उत्तरवर्ती समय में 12 वर्ष का भयानक दुष्काल पड़ा। ऐसा विकट समय आ गया था कि जवाहरात देने के बदले भी सेर जुवार नहीं मिलती थी। साधु संतों को निर्दोष आहार मिलना मुश्किल हो गया। ऐसी स्थिति में संयम को प्राणों से अधिक महत्त्व देने वाले 748 संतों ने प्राणों की बाजी लगा दी अर्थात् संधारा ग्रहण कर देह की कुर्बानी दे दी। जिन साधुओं का आत्म-बल इतना विकसित नहीं था, उन्होंने देशकाल की परिस्थिति के अनुसार अपने नियमों में परिवर्तन कर लिया।

धीरे-धीरे आचार धर्म की मर्यादाएँ शिथिल पड़ गईं। जहाँ एक कमजोरी घुस जाती है वहाँ दूसरी कमजोरियों को स्थान मिल जाता है। धीरे-धीरे साधु संघ में अनेक विकृतियाँ आ गईं। मठ बनने लगे। चैत्यवाद का श्री गणेश हो गया। स्मारक, छत्रियाँ, पगलिये बनने लगे। जड पूजा को स्थान मिला, चढावा लिया जाने लगा। मंत्र, तंत्र, जादू, टोना और चमत्कारों का आश्रय लिया जाने लगा। यतियों ने जायदाद रखना प्रारंभ कर दिया। राजसभाओं में जाकर चमत्कार बताकर पालखी और अन्य राज्य सम्मान प्राप्त किये जाने लगे। धर्म के नाम पर व्यक्तिगत पूजा और पाखंड तथा आडम्बर अत्यधिक फैल गया। धर्म गुरु खूब मनमानी करने लगे। शिथिलाचार चरम सीमा पर पहुँच गया। धर्म का प्रकाश पाखंड के पर्दे से मंद हो गया। ऐसे अंधकार के समय में जब पाखंड और आडम्बर रूपी अमावस्या ने शुद्ध सनातन जैन धर्म के चन्द्र को ग्रस लिया था तब अंधकार में प्रकाश करने वाले वि सं 1472 कार्तिक पूर्णिमा की रात्रि में गगन मंडल में चन्द्रमा अपनी सम्पूर्ण कलाओं से उद्योत कर रहा था, इधर सिरोही जिले के अरहठवाडा ग्राम में, गंगा के समान पवित्र माता गंगादेवी की कुक्षी से एक नवीन

चन्द्र का उदय हुआ। जैसे पूर्णिमा का चन्द्र रात्रि के स्थूल अधकार को नष्ट कर रहा था। वैसे ही उदीयमान लोकचन्द्र का उदय भी धर्म के क्षेत्र में फैले अंधकार को नष्ट करने के लिए हुआ था।

पिता हेमाशाह एवं जिनकी माता गंगा देवी यथानाम तथागुण सम्पन्न हो तो उस बालक की विशेषता, विलक्षणता और विचक्षणता के सबध में कहने की आवश्यकता नहीं रहती। योग्य माता-पिता की सतति प्रायः सुयोग्य ही होती है। यह लोकचन्द्र वस्तुतः लोक के लिए चन्द्र रूप ही सिद्ध हुआ। माता-पिता ने नाम रखा—लोकाशाह। कितना विराट रूप है इस नाम का। लोक का शाह। सचमुच वह किसी स्थान विशेष का शाह न होकर समस्त ससार का शाह बन कर आया। वे आत्मक्रांति एवं मानवोद्धार की उदात्त भावना के साज-बाज के साथ आये।

लोकाशाह बावड़ी, तालाब, कुओं बनकर नहीं आये, परन्तु मेघ बनकर आये। मेघ लाते हैं पानी और ये लेकर आये भगवद् वाणी।

लोकाशाह के हम क्या गुण गाये ? उनका जितना उपकार माने उतना थोड़ा है। कोई रणवीर बनकर आते हैं, कोई कर्मवीर बनकर आते हैं, पर लोकाशाह आये धर्मवीर बनकर। आये धर्मवीर, लाये शुद्ध श्रद्धा का नीर। जिन तथाकथित गुरुओं के हृदयों पर विषय-वासना का जग चढा हुआ था उसे भंग करने के लिए लोकाशाह आये। जो जनसमुदाय जड-उपासना में चैतन्य को भूल रहा था उन्हें चैतन्य-उपासना की सच्ची राह बताने के लिए लोकाशाह अवतरित हुए।

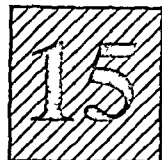
अन्य धर्मावलम्बियों के महापुरुष पापियों का सहार करने के लिए आते हैं, परन्तु हमारे महापुरुष सहार के लिए नहीं अपितु उद्धार के लिए आते हैं। वे मारने के लिए नहीं अपितु तारने के लिए आते हैं। लोकाशाह एक कुशल वैद्य बनकर आये। वे बीमारी मारने आये और बीमार को तारने आये।

लोकाशाह के जन्म से माता पिता को अपार हर्ष हुआ। चारों ओर से बधाइयाँ आने लगी। खुशियाँ मनाई गईं। यथासमय पढने के लिए पाठशाला में प्रविष्ट हुए। विद्याध्ययन समय से ही आपमें तीन विशिष्ट गुण विद्यमान थे—

1. तीव्र स्मरण शक्ति 2 अद्भुत विवेचन अभिव्यक्ति 3 सुन्दर मुक्ता सी झिलमिलाती लिपी।

“मेरे पास जीर्ण-शीर्ण शास्त्र की प्रतिया हैं, उन्हें तुम तुम्हारे मोती जैसे अक्षरो मे लिपीबद्ध करदो तो भारी श्रुत सेवा होगी।” लोकाशाह ने स्वीकृति देकर लेखन कार्य करना शुरू कर लिया। यति जी से शास्त्र लाते और उसका लेखन करते। कहते है कि “दवाई देते कम्पाउन्डर भी डॉक्टर के समान अनुभवी हो जाते है।” ठीक वैसे ही शास्त्रो का लेखन करते-करते विचक्षण बुद्धि वाले लोकाशाह को शास्त्रो का मर्म समझ में आने लगा। दशवैकालिक का आलेखन करते समय साधु के आचार-मर्यादाओं का वर्णन उनके पढने में आया। उन्होंने विचार किया—कहाँ तो साधु मुनिराजो के लिए शास्त्र में बताई गई, आचार मर्यादाएँ और कहीं वर्तमान में इन साधुओ का आचरण ? दोनो मे आकाश-पाताल का अन्तर है। अहो ! शुद्ध चारित्र धर्म का लोप हो रहा है। यह नितान्त अवांछनीय है। प्रभु महावीर का शुद्ध सनातन धर्म, मिथ्या आडम्बरो एवं पाखंड से दूषित किया जा रहा है। धर्म की रक्षा करने की बागडोर जिनके हाथ में है वे ही गुमराह हो रहे हैं और दूसरों को गुमराह कर रहे है। सर्वत्र जडवाद, आडम्बर, व्यक्तिगत पूजा-प्रतिष्ठा, मठ, जायदाद आदि का बोलबाला है। वैराग्य, आध्यात्म एवं आत्म-साधना की इनमे झलक भी नहीं है। मेरा सौभाग्य है कि—मुझे जिनवाणी पढने और उसके मर्म को समझने का यह भव्य प्रसंग प्राप्त हुआ। उन्होंने प्रत्येक शास्त्र की दो-दो लिपियाँ तैयार कर 1-1 प्रति यतिजी को दे दी और एक-एक अतिरिक्त नकल अपने पास रखली। उस पर चिन्तन-मनन करने से उनमें एक जागृति का भाव पैदा हुआ। उन्होंने सोचा—मेरा यह नैतिक कर्तव्य हो जाता है कि मैं जनता के सामने शास्त्रोक्त वास्तविकता प्रकट करूँ। गलत मार्ग पर जाती हुई जनता को शुद्ध आचार-मर्यादाओं की जानकारी दूँ।

निस्संदेह यह कार्य कठिन है। विशाल जनसमूह की रूढिगत परम्परा के विरुद्ध बोलना साधारण बात नहीं है। इसमें अनेक कठिनाईयाँ हैं। परन्तु कुछ भी हो, मुझे जो सत्य-दर्शन हुआ है, वह जनता के सामने रखना मेरा कर्तव्य हो जाता है। इस शुद्ध श्रद्धा प्ररूपणा में मुझे भले ही बलिदान हो जाना पडे, मैं यह अवश्य करूंगा। लोकाशाह ने दृढ संकल्प कर लिया। विरोध कठिनाई और निराशा से व्याकुल न होते हुए उस निर्भीक शेर ने सत्य धर्म का सिंहनाद करना प्रारंभ कर दिया। उन्होंने यह स्पष्ट उद्घोषणा की कि—“यह जडोपासना आत्मा का उद्धार करने वाली नहीं है। चैतन्य-उपासना से



मौन एकादशी की महिमा

पर्व पवित्रता एव श्रेष्ठता का सूचक है। जैन ज्योतिष के अनुसार प्रत्येक पक्ष की पाच तिथिया पर्व एव तिथि कहलाती है। द्वितीया, पचमी, अष्टमी, एकादशी तथा चतुर्दशी एव पूर्णिमा। प्रज्ञापना सूत्र मे बतलाया गया है कि द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव आदि का प्रभाव भी कर्मों के उदय, क्षयोपशम भाव मे, उनके तीव्र-मद फल देने मे निमित्त बनता है। जैसे अमुक नक्षत्र मे की गई ज्ञान-आराधना, ध्यान-साधना शीघ्र लाभदायी होती है। इन्हीं पर्व तिथियो में मिगसर सुदी एकादशी एक विशेष पर्व है।

एकादशी मे 1 का अंक दो बार लिखा जाता है। गणित मे 1 से 9 तक के अंक है। इसमे 1 का अंक कुछ विशेष महत्त्व रखता है। 1 यह एकाकी शक्ति है। यदि इसके पास दूसरा 1 अंक रख दिया तो एका 1+1 मिलकर ग्यारह (11) हो गये। दो एक मिलते ही एक की शक्ति दस गुणी बढ गई। आध्यात्म शास्त्र मे पहला 1 अंक ज्ञान का प्रतीक है। दूसरा 1 अंक आचरण का प्रतीक है। अगर अकेला ज्ञान है तो वह एक के अंक का मूल्य रखता है किन्तु यदि ज्ञान के साथ आचरण भी जुड़ गया तो उस ज्ञान की शक्ति दस गुणी बढ जाती है।

प्राचीन जैन साहित्य मे मार्गशीर्ष मास की एकादशी का महत्त्व बताते हुए इतिहासकारो ने लिखा है—

अस्यां चक्रीपदं हित्वा, ग्रहीदरजिनो व्रतम्।

जन्म-दीक्षा च सज्ज्ञानं, मल्ली ज्ञानं नमीश्वरः ॥

मिगसर सुदी एकादशी के दिन 18वे तीर्थकर अरनाथ भगवान् ने चक्रवर्ती सम्राट का अपार वैभव त्यागकर मुनि दीक्षा ग्रहण की। 19वे तीर्थकर मल्लीनाथ भगवान् का जन्म, दीक्षा एवं केवलज्ञान ये तीनों कल्याणक इसी एकादशी के दिन हुए तथा 21वे तीर्थकर श्री नेमीनाथ भगवान् को केवलज्ञान भी एकादशी के दिन हुआ। इस प्रकार इस

अवसर्पिणीकाल के तीन तीर्थकरों के पांच कल्याणक इस मार्गशीर्ष एकादशी को सम्पन्न हुए। आचार्य श्री हेमचन्द्र ने लिखा है कि—

“नारकाऽपि मोदन्ते यस्य कल्याण पर्वसु।”

तीर्थकर भगवान् के कल्याणक के पवित्र क्षणों में समूचे संसार में हर्ष की लहर दौड़ जाती है। अतीव दुःखी नरक के जीव भी उस पवित्र क्षणों में अत्यन्त आनन्द और हर्ष की अनुभूति करते हैं। सघन अंधकारमय स्थानों में भी प्रकाश की आभा फूटती है और ऐसा महसूस होता है कि संसार में कोई दिव्य प्रकाश फैल रहा है, झुलसती गर्मी में कोई शीतल हवा का झोंका आ रहा है। यह दिव्य प्रभाव होता है—तीर्थकरों के कल्याणक का। स्थानांग, समवायांग आदि सूत्र भी इस बात के साक्षी हैं कि तीर्थकरों के कल्याणक का क्षण संसार के लिए अद्वितीय, अनिर्वचनीय आनन्द उल्लास एवं प्रकाश का क्षण होता है क्योंकि तीर्थकर भगवान् असीम पुण्यों के पुंज होते हैं। उनका अतिशय अद्वितीय होता है, इसी कारण उनके कल्याणक का महत्त्व है। कल्याणक का अर्थ ही है कल्याणकारी।

मार्गशीर्ष शुक्ला एकादशी के दिन जैसे तीन तीर्थकरों के पांच कल्याणक भरत क्षेत्र में इस अवसर्पिणीकाल में हुए ठीक वैसे जैन ग्रंथकारों की यह मान्यता है कि जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में जिस दिन ये पांच कल्याणक हैं, उसी दिन ऐरावत क्षेत्र में भी इस क्रम से कल्याणक होते हैं। इस प्रकार पांच कल्याणक भरत क्षेत्र में और पांच कल्याणक ऐरावत क्षेत्र होने से 10 कल्याणक जम्बूद्वीप में इस दिन हुए। घातकीखंड द्वीप में 2 भरत क्षेत्र हैं 2 ऐरावत क्षेत्र हैं और पुष्करार्द्ध द्वीप में भी 2 भरत क्षेत्र हैं। 2 ऐरावत क्षेत्र हैं। इस प्रकार कुल 5 भरत एवं 5 ऐरावत क्षेत्र के $10 \times 10 = 50$ कल्याणक हुए। ये इस अवसर्पिणी काल के 50 कल्याणक, इसी प्रकार अतीतकाल की चौबीसी और अनागत काल की चौबीसी के $50 + 50$ और जोड़ने पर कुल 150 कल्याणक तीनों काल में इस दिन सम्पन्न होते हैं। यही वजह है कि मार्गशीर्ष शुक्ला एकादशी का दिन बहुत ही शुभ, श्रेष्ठ एवं पवित्र माना जाता है। इस दिन तप (उपवास) जप (तीर्थकर नाम की माला रूप जाप) और मौन द्वारा 150 तीर्थकरों की आराधना, उपासना की जाती है। मन, वचन एवं काय त्रय योगों से मौन एकादशी पर्व की आराधना की जाती है। मन का तप-एकाग्रतापूर्वक जाप एवं ध्यान, वचन का तप-मौन और काया का तप-

आचार्य श्री को वन्दन करने गये। आचार्य श्री ने धर्म देशना मे प्ररूपित किया—

“आहृच्च श्रवणं लद्धुं, श्रद्धा परम दुल्लहा ।”

(उत्त अ. 3 गाथा 9)

कदाचित् पुण्य के योग से शास्त्र-श्रवण करने का सुयोग मिल जाये, परन्तु उसमे श्रद्धा होना बहुत कठिन है। तत्त्व का पूरा निश्चय देव, गुरु और धर्म की सच्ची पहचान, सत्य मार्ग मे पूरी-पूरी रुचि और प्राणीमात्र के प्रति हार्दिक प्रेम ही श्रद्धा है। इसी श्रद्धा को बोधि कहते है। वह कर्म की लघुता के बिना प्राप्त नहीं होती। ज्ञानावरणीय आदि किसी भी कर्म की स्थिति एक कोडा-कोडी सागरोपम से अधिक न हो, किन्तु कुछ कम हो तब राग-द्वेष की मजबूत ग्रंथि (गांठ) खुलती है। ग्रंथि-भेद होना कर्म की लघुता का ही चिन्ह है। ग्रंथि-भेद होने से बोधि-सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है।

बोधि का प्रभाव इतना अधिक है कि उसने जिसको पा लिया, उसका भव-भ्रमण अधिकांश मे रुक जाता है। बोधि प्राप्त होने के बाद यदि वह स्थित रहे, तो साधक को पन्द्रह भव मे मुक्ति प्राप्त हो जाती है। यदि वह उत्पन्न होकर नष्ट हो जाती है तो भी अर्द्ध पुद्गल परावर्तन में मोक्ष अवश्य ही होता है। चारित्र का मूल भी यही बोधि है। इसके बिना की जाने वाली समस्त क्रियाएं निष्फल हो जाती हैं, बिना अंक के शून्यों के समान हो जाती हैं। पहले एक का अंक हो, तो शून्यों की कीमत है, एक का अंक न हो तो सब शून्य बेकार हैं। इसी प्रकार बोधि-सम्यक्त्व से ही चारित्र की सफलता है। मनुष्य-भव, आर्य-क्षेत्र, उत्तम-कुल, निरोगी शरीर, परिपूर्ण इन्द्रियां, लम्बी आयु, शास्त्र-श्रवण और श्रद्धा इन सभी को दुर्लभता बतलाने का आशय यह है कि ये बहुत मूल्यवान एव दुर्लभ है।

जो वस्तुएं अधिक कीमती होती हैं, वही दुर्लभ होती हैं। जो वस्तुएं अधिक कीमती होती हैं, उन्हें पाने के लिए मन ललचाता रहता है। वे मिल जाती हैं, तो कीमती समझ कर उनकी रक्षा बड़ी सावधानी से की जाती है, क्योंकि यदि उनके मिलने का अवसर निकल गया तो फिर बार-बार ऐसा अवसर नहीं मिलता है। फिर तो अनन्त काल व्यतीत हो जाने पर भी भाग्य से ही ऐसा सुन्दर अवसर हाथ लग सकता है। अतएव प्राप्त न हो तो उसको प्राप्त करने का पुरुषार्थ करना चाहिए और प्राप्त होने पर उसकी रक्षा का

प्रयत्न करना चाहिये।”

आचार्यश्री के मुख से वैराग्यमयी देशना सुन कर सेठजी ने प्रतिबोध पाया, उन्होंने अपनी ग्यारह स्त्रियो सहित बडी उमग के साथ चारित्र अगीकार किया। निरतिचार चारित्र का पालन करते हुए द्वादशागी का अध्ययन किया। वे एक छ मासी तप, चार चौमासी तप, सौ तेले, दो सौ बेले, आदि अनेक प्रकार की तपश्चर्याओ मे रमण करते हुए विचर रहे थे।

वैयावृत्य करना उनका मुख्य लक्ष्य था। एक समय 'सुव्रत सेन मुनि' 'मौन एकादशी' का व्रत किये हुए थे। उस दिन एक साधु के शरीर में सहसा दाह-ज्वर की पीड़ा हो गई थी। रात्रि का समय था। एक मिथ्यात्वी देव ने सुव्रतसेन मुनि को साधना से विचलित करने के लिये उस रोगी साधु के शरीर मे प्रवेश किया। वेदना प्रबल होती चली गई।

उस रोगी साधु ने सुव्रतसेन मुनि से कहा—“तुम सेवाभावी सन्त कहलाते हो, पर मेरे शरीर मे भयकर दर्द होने पर भी क्या तुम्हे कुछ भान नहीं हो रहा है ? क्या तुम्हे दया नहीं आ रही है ? कहा है तुम्हारा सेवा-भाव ?”

यह सुनकर सुव्रत मुनि समझ गये कि यह मुनि तो साधु मर्यादा मे पूर्ण दृढ है, ऐसा प्रतीत होता है कि इसके द्वारा कोई मिथ्यात्वी देव बोल रहा है।

सुव्रत मुनि ने शान्तिपूर्वक सकेत से निवेदन किया कि—“साधु-मर्यादा है कि वह रात्रि को कहीं न जाय।”

यह सुनकर रोगी मुनि के क्रोध की सीमा न रही। क्रोधावेश मे आकर रजोहरण द्वारा सुव्रत मुनि को खूब पीटा एव एक बडा पत्थर उठाकर उन पर दे मारा। लेकिन इतना होने पर भी सुव्रत मुनि मेरु के समान अडिग रहे। अपने ऊपर दैविक उपसर्ग आया जानकर ध्यानारूढ हो गये। अध्यवसायो की विशुद्धि बढती गई आखिर क्षपक-श्रेणी पर आरोहणकर उसी रात्रि मे केवल्य ज्योति को प्राप्त कर लिया।

जब सुव्रत मुनि अपनी साधु-मर्यादा मे दृढ रहे तो देवता ने अपनी हार मान ली और मुनि के शरीर से निकलकर सुव्रत केवली के चरणारविन्दों मे नतमस्तक होकर बोला—

पूर्ण विषय था। चिन्तना-वर्षण की उसकी आदत ही नहीं थी।
 था। साथ ही धार्मिक प्रवृत्तियाँ भी थीं। अपने भाई और अपनी पत्नी पर उसे
 निकट दृष्टि थी। उनकी आँसू से आँसू के सँभलने की। मरुमूर्ति तो सरलता
 सेवन करने लगी। कामान्धव ने दृष्टि की और सँभलने की।
 ही गया और वसुधैव कुटुम्बकम् की अपनी तरफ आकर्षित कर उसके साथ
 उसकी भावना पूर्ण नहीं हो पाई। माता-पिता की मर्त्य के बाद वह स्वच्छन्द
 चल था। कमल उसके रूप पर आसक्त तो था पर माता-पिता के समक्ष
 मरुमूर्ति की पत्नी वसुधैव कुटुम्बकम् ही थी, साथ ही उसका चित्त

संलक्षणा-संसारार्थक अर्थ पूर्ण करके स्वर्गावस्थी हो देती वने।
 पूर्ण पर वह अर्थ को अपना दृष्टि से ही पाए और धर्म को समर्पित हो गए।
 जीवन की संलक्षणा जानकर राजपुत्रिण और उनकी पत्नी ने

मरुमूर्ति की पत्नी का नाम वसुधैव कुटुम्बकम् था।
 करके अपना दृष्टि पर ही कर दिया। कमल की पत्नी भी-वर्षण और
 सबके आँसू की चिन्तना थी। पुत्रिण विषय ही था। पुत्रिण का विवाह
 स्वभाव की हरे विष्णु से मरुमूर्ति से मरुमूर्ति प्रिय था और कमल

वह कभी और परदास लम्पट और परदास का करे था।
 व्यवहार करके ही तो कमल कर्षण के आगे सँभलने रहता था।
 उजाले थी। मरुमूर्ति स्वभाव से नम, सौम्य, मद कर्षण, मिलनसार और
 स्वभाव से आकाश पालक का अन्तर था। कमल पतनी-मूर्च्छा थी तो मरुमूर्ति
 मरुमूर्ति। एक ही जाली पर उचल कर ही और फूल की मालि डेन देने के
 राज पुत्रिण विषय ही था। के दे पुत्र-बला कमल और छोट
 दो-दो सँभलने ही था। उसकी पत्नी अर्चुन्या भी धर्मपरायण थी।
 राजा का पुत्रिण ही-विषय ही था। सदावारी और धार्मिक उसके

देते थे।
 न्यायी था। अपराधी को क्षमा करना वे नहीं जानते थे, उसे अवश्य ही दंड
 भरत क्षत्र के पीतनपर नगर में महाराज अरिंद प्रजापत्य पर

प्रथम अर्ध-मरुमूर्ति और कमल का-

प्रथम अर्ध-मरुमूर्ति और कमल का-
 प्रथम अर्ध-मरुमूर्ति और कमल का-
 जीवन-धारा विवक्षित ही है। भावना परधर्म-धर्म की साधना का
 रही। वस्तुतः महान् वेतना में महनीय व्यक्तित्व से सम्पन्न ही है। उनकी

महान आत्मा सदा ही उसे क्षमा करती रही, उसके भलाई की कामना करती
 10 जानती तक उनको बराबर कष्ट देता रहा, प्रणालि करता रहा, पर उनकी
 उनके पिछले जान्नी की कठानियाँ इस बात की साक्षी है कि दुष्टाना कमठ
 करना तथा शत्रु पर भी मित्र भाव रखना यह उनके जीवन आदर्श थे।
 अपराधी की भी क्षमा करना, दुष्ट के साथ भी सज्जता शिष्टता का व्यवहार
 ऐसा ही आग-पानी का खेल है—मगवान पार्वनाथ का जीवन।

ज्वालना और भी बढ़ती गई। बुझी नहीं।
 लिए क्षमा विनम्रता शान्ति का सलिल छिंटका, त्यों-त्यों कमठ की वर-
 ज्या-ज्या पार्वनाथ मगवान ने कमठ की वरानि को शांत करने के
 जला भी नहीं सकती।

यह सत्य है कि अग्नि कभी जल नहीं बन सकती और वह हिम को
 पार्वनाथ भव-परिप्रमण से मुक्त हो गया।

ही रखा—एक जन्म में नहीं, नौ जन्मों तक। और वह वर वर तभी शांत हुआ जब
 मगवान ने विनम्रता रखी, उनको आदर दिया, फिर भी उस भाई ने वर बांधे
 किया, पाप किया, लोकविरोध और लोकनिंद कर्ष किया, इस पर भी
 मगवान पार्वनाथ के जीवन में सत्य धटित हुई। उनके बड़े भाई ने अपराध
 लोकोक्ति है कि—“भाई से बड़ा शत्रु नहीं होता। यह लोकोक्ति

सज्जन क्षमा करे, फिर भी वह वर बांधे रहे।
 भी होता है कि एक व्यक्ति स्वयं ही अपराध करे, सज्जन को सहाय और
 बढ़ती है और क्षमा के अमृत से कोष और वर शांत हो जाता है। किंतु ऐसा
 साधारण मान्यता है कि कोष से कोष बढ़ता है, वर की परम्परा
 सदा स्मरण किया जाता रहा है।

मगवान पार्वनाथ का नाम क्षमा एवं करुणा के देवता के रूप में

पुरुषार्थानुय मगवान पार्वनाथ



नारियोँ सम्यग्दृष्टि बन प्रभु के भक्त बनेँ।

अपना आयुकल निकट समझकर प्रभु सम्मैद शिखर पधारे और तेतीस साधुओ के साथ 1 मास का अनशन कर शुक्लध्यान के तृतीय और चतुर्थ चरण पर आरोहण किया। श्रावण शुक्ला अष्टमी को विशाखा नक्षत्र मे चन्द्र का योग होने पर प्रभु सिद्ध बुद्ध मुक्त परिनिर्वाण अवस्था को प्राप्त हुए।

प्रभु पार्श्वनाथ को पुरुषादानीय क्यो कहा ?

आगमों में अन्यान्य तीर्थकरोँ का 'अरहा' विशेषण से ही उल्लेख किया गया है। जैसे— 'मल्ली अरहा', 'उसभेणं अरहा', 'अरहा अरिष्टनेमि' इत्यादि। पर पार्श्वनाथ के नाम के साथ अंग-शास्त्रों में 'पुरिसादाणी' विशेषण दिया गया है। अतः इस विशेषण जोडने का कोई न कोई कारण अवश्य होना चाहिए।

वह कारण यह हो सकता है कि निरयावलियोँ सूत्र के पुष्पिता नामक तृतीय वर्ग के प्रथम तथा द्वितीय अध्ययनो में क्रमशः ज्योतिषेन्दु चन्द्र और सूर्य का तथा तृतीय अध्ययन मे शुक्र महाग्रह का वर्णन है, ये तीनों प्रभु पार्श्वनाथ के शिष्य थे। चन्द्र और सूर्य क्रमशः पूर्वभव मे अगति गाथापति और सुप्रतिष्ठ गाथापति थे। संसार से विरक्त हो भगवान पार्श्वनाथ के चरणो में दीक्षित हुए। उग्र तपस्याएं की, संयम के मूलगुणो का पूर्णरूपेण पालन किया, लेकिन संयम के उत्तरगुणो की विराधना की और अंत मे संयम मे अतिचारों की आलोचना किये बिना ही संलेखनापूर्वक काल कर ज्योतिष इन्द्र बने। तथा शुक्र महाग्रह पूर्वभव मे सोमिल नामक ब्राह्मण था, प्रभु पार्श्वनाथ से अपने अनेक प्रश्नों का सम्यक् समाधान पाकर परम संतुष्ट हुआ और श्रावक धर्म को अंगीकार किया। कालान्तर में असाधुदर्शन एवं मिथ्यात्व के उदय से तापस बनने की उत्कृष्ट भावना बनने से तापस बन गया। पुनः देव प्रतिबोध से श्रावक धर्म स्वीकार कर घोर तपश्चर्याओ के साथ श्रमणोपासक पर्याय का पालन कर अंत में 15 दिन की संलेखना से आत्मा को भावित करता हुआ पूर्वकृत दुष्कृत की आलोचना किये बिना आयुष्य पूर्णकर वह शुक्र महाग्रह के रूप में देव हुआ। इसी प्रकार निरयावलिया सूत्र के तृतीय वर्ग के चतुर्थ अध्याय मे सौधर्मकल्प मे उत्पन्न ऋद्धिशालिनी बहु पुत्रिका देवी का वर्णन है। पूर्वभव में सुभद्रा नामक गाथा पत्नी थी। वन्ध्यत्व से अत्यन्त दुःखी और भगवान पार्श्वनाथ की शिष्या

को सच्चे सुख की राह बताई एव उलझी हुई जटिल समस्याओं को सुलझाकर मानव समाज की अत्यधिक प्रीति प्राप्त की।

इसके अतिरिक्त भगवान् पार्श्वनाथ के विशिष्ट प्रभाव एव उन्हें 'पुरुषादानीय' कहने का एक कारण उनका प्रबल पुण्यातिशय एवं अधिष्ठाता देव-देवियों का सानिध्य भी हो सकता है।

भगवान् पार्श्वनाथ ने केवलज्ञान की प्राप्ति के पश्चात् अपने दीर्घ केवलिकाल में अनार्य देशों में परिभ्रमण कर अनार्यजनों को भी अधिकाधिक संख्या में धर्मानुरागी बनाया हो तो यह भी उनकी लोकप्रियता का विशेष कारण हो सकता है।

पार्श्वप्रभु ने कुमारकाल में प्रसेनजित की सहायता की और राजा यवन को अपने प्रभाव से झुकाया। सम्भव है कि यवनराज भी आगे चलकर भगवान् पार्श्वनाथ उपदेशों से अत्यधिक प्रभावित हुआ हो और उसके फलस्वरूप अनार्य कहे जाने वाले उस समय के लोग अधिकाधिक धर्म मार्ग पर आरूढ हुए हो और इस कारण भगवान् पार्श्वनाथ आर्य और अनार्य जगत् में अधिक आदरणीय और लोकप्रिय हो गये हो।

आज जैन साहित्य के अन्तर्गत स्तुति, स्तोत्र और मंत्रपदों से भी ज्ञात होता है कि वर्तमान अवसर्पिणी काल के चौबीस तीर्थंकरों में से भगवान् पार्श्वनाथ की स्तुति के रूप में जितने मंत्र या स्त्रोत उपलब्ध होते हैं, उतने अन्य के नहीं हैं।

भगवान् पार्श्वनाथ की भक्ति से ओत-प्रोत अनेक महात्माओं एवं विद्वानों द्वारा रचित प्रभु पार्श्वनाथ की महिमा से पूर्ण कई महाकाव्य, काव्य, चारित्र, अगणित स्तोत्र आदि देश के विभिन्न भागों में प्रभु पार्श्व के प्राचीन भव्य कलाकृतियों के विशाल मन्दिरो का बाहुल्य, ये सब इस बात के पुष्ट प्रमाण हैं कि भगवान् पार्श्वनाथ के प्रति धर्मनिष्ठ मानव-समाज पीढ़ियों से कृतज्ञ और श्रद्धावन्त रहा है। प्रभु पार्श्वनाथ को "चिन्तामणी" विशेषण भी लगाया गया है, इसका कारण भी यही हो सकता कि प्रभु पार्श्व की स्तुति करने पर प्रसन्न हुए पूर्वोक्त देव-देवियाँ भक्तों की चिन्ता को दूर कर अरमानों को पूर्ण करने में सहयोगी बनते होंगे। ऐसे पुरुषादानीय प्रभु पार्श्वनाथ की जन्म-जयंति हमारे जीवन में आत्म-जागृति का संचार करे एवं समता-भावों के साथ सम्पूर्ण कर्मों का क्षय करने का पराक्रम प्रगट करे।



चिदानन्द खले होरी

भारतीय जीवन एवं संस्कृति में पर्व और त्यौहारों का विशेष महत्व है। पर्व एवं त्यौहार जीवन की नीरसता और जडता को भंग कर उसमें सरसता और नवचेतना का संचार करते हैं। हमारे जो मुख्य त्यौहार हैं, वे ऋतु परिवर्तन अथवा प्रकृति परिवर्तन के सूचक हैं। बाह्य प्रकृति में काल-प्रवाह के साथ जो परिवर्तन होता है, उससे हमारे जीवन के तौर-तरीके और क्रिया-कलाप प्रभावित होते हैं। इस दृष्टि से ये पर्व और त्यौहार अपने बहिर्मुखी व्यक्तित्व के साथ-साथ आन्तरिक व्यक्तित्व एवं गुणवत्ता लिये हुए हैं। दीपावली, रक्षाबंधन, दशहरा, मकर-संक्रान्ति, अक्षय-तृतीया, होली आदि लोक-पर्वों को इस दृष्टि से देखा-परखा जाना चाहिए।

जब सूर्य मकर-रेखा से कर्क-रेखा की ओर अभिमुख होता है, प्रकृति में परिवर्तन परिलक्षित होने लगता है। सर्दी समाप्त होती है और उसकी कूख से गर्मी पैदा होने की प्रक्रिया प्रारंभ होती है। इस अवस्था को बसंत कहा जाता है। सर्दी और गर्मी के संघी-काल में होली-पर्व आता है। इस पर्व के इर्द-गिर्द प्रकृति के कण-कण में चेतना का स्फुरण होता है। प्राचीनता के प्रतीक पुराने पत्ते झड़ जाते हैं और उनका स्थान नये पत्ते ले लेते हैं। नवीनता का अभिग्रहण इसकी प्रमुख विशेषता है। नवीनता को ग्रहण करने के लिये विशेष प्रकार की मानसिकता और संकल्प शक्ति की आवश्यकता होती है। इस बल का संचय नवीन भावों और विचारों का वाहक बनता है। प्रकृति में शरद-ऋतु एक प्रकार से शक्ति संचय की ऋतु है। शक्ति का संचय जब अपने में सीमित नहीं रहकर लोक कल्याण के लिये प्रवृत्त होता है, तब वह सब ओर चेतना, उमंग और प्रसन्नता का भाव अभिव्यक्त करता है। बसन्त-ऋतु के रूप में प्रकृति का पल्लवित, पुष्पित और फलित होना प्रकारान्तर से संचित शक्ति का लोक-कल्याण के लिए समर्पण और वितरण है।

“होली” शब्द में परिपक्वता और पूर्णता का भाव है। जो फसल पक गई है, पूर्ण हो गई है, उसके विवेकपूर्ण उपयोग का भाव-संदर्भ होली पर्व के साथ जुड़ा हुआ है। जन-श्रुति के रूप में होली-पर्व के साथ तीन कथाएँ या घटनाएँ भी जुड़ी हुई हैं।

एक कथा इस प्रकार है-कहा जाता है कि हिरण्यकश्यप एक क्रूर अत्याचारी राजा था। वह सात्त्विक-वृत्तियों का विरोधी था। वह अपने को सर्वस्व समझता था। उसमें दम्भ और दर्प कूट-कूट कर भरा हुआ था। वह क्रूर दानवों की आराधना करता था और उसका पुत्र प्रह्लाद धार्मिक संस्कारों से सम्पन्न प्रभु-भक्त था। अरिहत देव का पुजारी था। हिरण्यकश्यप को यह असह्य था कि उसका पुत्र वंश-परम्परा के प्रतिकूल संस्कारों में पले। उसने अपने पुत्र को प्रभु-भक्ति का परित्याग करने हेतु बहुत प्रलोभन दिये, पर वह किंचित् मात्र भी विचलित नहीं हुआ तो पिता ने उसे तरह-तरह से यातनाएँ दीं, परेशान किया, धमकियाँ दीं। वह शांत भाव से सब कुछ सहता रहा, लेकिन जिस कार्य को करने के लिए उसकी आत्मा ने साथ नहीं दिया, वह उस कार्य को करने के लिए तैयार नहीं हुआ। एक दिन उसके पिता ने सोचा कि-“यह बालक अभी से हमारी परम्परा का उल्लंघन कर रहा है, तो बड़ा होकर न जाने क्या करेगा ? अतः इसे जिन्दा ही जला देना चाहिए।” ऐसा सोचकर हिरण्यकश्यप ने अपनी बहिन होलिका को बुलाया। होलिका के पास एक चुनरी थी, जिसे ओढ़कर वह जलती हुई अग्नि में भी प्रवेश करके ज्यों की त्यों बाहर निकल सकती थी। भाई ने होलिका को कहा कि-“तुम अपनी चुनरी ओढ़कर प्रह्लाद को गोद में लेकर इस अग्नि कुंड में बैठ जाओ। दोनों भाई-बहिन के क्रूर एवं नृशंस कर्म से सारा वातावरण आतंकित था। पर आठ वर्षीय सुकुमार बालक प्रह्लाद सारी स्थिति को भांपकर भी उतना ही शांत एवं निर्भिक बना रहा। जब होलिका ने प्रह्लाद को गोद में लेकर अग्नि में प्रवेश किया तो इस दृश्य को देखने वाले सभी भयातुर एवं शोकाकुल हो गये। वह प्रभु भक्त प्रह्लाद उस समय भी पूर्ण निर्भयता के साथ प्रभु स्मरण में लीन था। प्रभु की असीम कृपा हुई, आत्मा की अचिन्त्य शक्ति ने काम किया, होलिका की चुनरी उड़कर प्रह्लाद पर गिर पड़ी, होलिका अग्नि की प्रचंड ज्वाला में जलकर भस्म हो गई और प्रह्लाद बच गया। इस घटना की स्मृति को जीवित बनाए रखने हेतु आज भी होलिका का दहन जगह-जगह

होलिका कुल-वधू थी, पर उसके आचरण मे कोई अतर नहीं आया। पति ने उसको समझाने का भरसक प्रयत्न किया, पर सब बेकार रहा। यह उसके स्वाभिमान एवं पौरुष पर करारी चोट थी। भला कौन मर्दाना अपना अपमान सहन करे, अतः क्रोधित होकर उस स्वाभिमानी पति गोविन्द ने अपनी पत्नी होलिका से हमेशा के लिए संबंध-विच्छेद कर उसे घर से निकाल दिया। पर उस चारित्रहीन नारी होलिका को कोई शर्म नहीं आई, वह हंसती-विहसती अपने पीहर पहुची। पिता देव श्रमण इज्जत वाले थे। ज्योहि पता चला कि यह ससुराल से हमेशा के लिए निकाल दी गई है तो क्रोधित होकर अपने पवित्र वश को कलकित करने वाली उस दुष्टा को इस लोकोक्ति के अनुसार कि "सोने की छुरी पेट मे भौकने के लिए नहीं होती।" घर से निकाल दिया। अनुसरण किया, साथ दिया। तब मोहान्ध बनी माता ने उसका साथ दिया। वह भी बेटी के साथ घर से निकल गई। उस प्रसंग से कामीजनों का मन-मयूर नाच उठा। उसके रूप पर कामान्ध बने पतंगे की तरह अपने जीवन को होमने लगे और वह होलिका भी मतवाली बनी प्रेमियों की संख्या बढ़ाने लगी। "कामातुराणा न भयं न लज्जा।" कामान्ध व्यक्तियों को न किसी का भय रहता है न लज्जा। वह निर्लज्ज बन नगर के बाहर छोटी-बड़ी दो कुटियां बनाकर माँ-बेटी अलग-अलग रहने लगी। इत्र की खुशबू और प्याज की गंध छिपाये नहीं छिपती। इसी प्रकार विकृत कार्य भी कभी गुप्त नहीं रहते हैं। धीरे-धीरे होलिका के पाप का घडा भर चुका था, अब फूटने का समय नजदीक आ गया। उसके कुकृत्यों की चर्चा पूरे नगर मे फैल गई। अन्ततः नगर-रक्षक ने राजा जितशत्रु को निवेदन किया कि- "राजन् ! होलिका का प्रबन्ध कीजिए, हमने उसको सही मार्ग पर लाने के काफी प्रयत्न किये पर हम असफल रहे।" अब आपके आदेश के इच्छुक है। सर्प और राजा का क्रोध जगत्प्रसिद्ध है। जब राजा को सारी जानकारी हुई तो क्रोधित होते हुए उन्होंने आदेश दिया कि अविलम्ब दोनो झोपड़िया जला दी जाय। उस दुष्टा का पाई-पाई बदला चुकाने हेतु राजा का यह कठोर आदेश था। तत्क्षण उनके आदेश का पालन किया गया। कुटिया जला दी गई। अग्नि किसे सुरक्षित छोड़ती है, उसकी लपटे आसमान को छूने लगी। दोनो कुटियों में सोये हुए पांच सौ दो व्यक्तियों का भक्षण कर गई।

दुष्ट कर्म का फल परलोक मे ही नहीं प्रत्युत इसी लोक मे दुःख रूप

होता है। देखिये, होलिका के दुष्कृत्य का दुःखरूप फल उसे उसी भव मे मिल गया, पर अभी दुःख का अंत कहाँ ? आर्तध्यान से मरने वाला दुर्गति का ही अधिकारी होता है। वे सब मरकर राक्षस जाति के वाणव्यंतर देव हो गये। वहाँ भी उन्हें अपने वैर का स्मरण हो आया। प्रतिशोध की भावना जाग उठी। वे राजा और प्रजा दोनो को परेशान करने लगे। राजा के दुःख का पारावार नहीं रहा। मन्त्रवादी तंत्रवादी सभी के प्रयत्न निष्फल रहे। राक्षसो का हौसला प्रतिदिन बढता गया। उन्होंने कई मनुष्यों को मौत के घाट उतार दिया। जब आचार्य गुणसागरजी एवं उनके 500 शिष्यो को उसी वन में उन राक्षसों ने ध्यानारूढ देखा तो वे बहुत ही प्रसन्न हुए, बल प्रयोग करने के लिए उत्सुक उन राक्षसो के पैर वहीं के वहीं धरती पर चिपक गये। उठाये गये शस्त्र हाथ मे ही रह गये। आज दिन तक कभी उनका वार खाली नहीं गया था। उन्हें बडा आश्चर्य हुआ। होलिका तो ठगी सी चित्रलिखित रह गई, उसे यह सब अपूर्व लगा। उसकी जिज्ञासा हुई और उसके तथा मुनियों के बीच इस प्रकार से वार्तालाप हुआ—

प्रश्न— “आप कौन है ?”

उत्तर— “हम साधु है।”

प्रश्न— “साधु किसे कहते हैं ?”

उत्तर—स्व-पर हित साधयते इति साधुः । जो अपना और दूसरो का हित साधते हैं, वे साधु है।

प्रश्न— “आपका सिद्धान्त क्या है ?”

उत्तर— हमारा सिद्धान्त कर्मवाद में विश्वास रखता है।

प्रश्न— “कर्मवाद का क्या अर्थ है ?”

उत्तर—सुख दुःख स्वकृत होता है। परकृत नहीं। यही कर्मवाद है।

प्रश्न— “क्या दुःख परोपार्जित नहीं होता है ?”

उत्तर—नहीं, कदापि नहीं।

प्रश्न— “तो प्रत्यक्ष राजा और नगर रक्षकों ने मुझे दुःख दिया, अग्नि में जला दिया। क्या यह दुःख परकृत नहीं था ?”

उत्तर—नहीं, कभी नहीं। यह दुःख तो तुम्हारे द्वारा आचरित कृत्यों

ने ही उत्पन्न किया था।

भगवन् ! तो क्या ऐसी बात है ? फिर मैं अपने कृत इन सारे दु खो से क्या मुक्त हो सकती हूँ ?

क्यो नहीं, अवश्य मुक्त हो सकती हो। पर एक शर्त है।”

“क्या शर्त है ?”

“तुम्हे इसका प्रायश्चित करना होगा ?”

“प्रायश्चित क्या होता है ?”

“बच्चे की तरह अपने पापकृत्यो को गुरु के समक्ष प्रगट करना तथा मन मे पश्चात्ताप की अनुभूति करना, उसकी आलोचना, निन्दा, गर्हा करना। मन मे यह अनुभव करना कि मैंने गलत कार्य किये है।”

क्या ऐसा करने से पाप समाप्त हो सकता है ?

“अवश्य”। पश्चात्ताप की अग्नि मे सारे पाप भस्म हो जाते है।”

ऐसा ही हुआ, होलिका ने अपने सारे पाप बालिका की तरह निश्छल भाव से बिना किसी लुकाव-छिपाव किये गुरु, राजा एव नागरिक जनो के समक्ष प्रगट कर दिये।

इस सत्कार्य से होलिका के भीतर का मिथ्यात्व रूपी अंधकार दूर हुआ और समकित के महान् प्रकाश से उसकी अन्तरात्मा जगमगा उठी। उसने अपनी शुद्धि हेतु नागरिक जनो को आदेश दिया कि “मेरी आत्मा की कालिमा को मुझे दूर करना है, अत आप एक कार्य करे कि हर वर्ष फाल्गुन शुक्ला पूर्णिमा के दिन दो छोटी-मोटी झोपड़िया बनाकर मुँह से मेरी निन्दा करते हुए झोपड़िया जला देना और दूसरे दिन चैत्र वदि एकम को झोली भर-भर कर धूलि उड़ाना तथा नगर मे ढिढोरा पीटना कि “जो कोई व्यक्ति होलिका की तरह अनार्य कृत्य करेगा, उसके सिर पर धूलि गिरेगी।” पर निन्दा से कर्म बध और आत्म-निंदा से कर्म निर्जरा होती है। पर खैद है, इस बात को भूल-भूलैये में डालकर गुण छोड अवगुण ग्रहण करते हुए नागरिक जनो ने होलिका के आदेश का पूर्णतया पालन किया और आज तक कर रहे है। होलिका ने तो प्रायश्चित के माध्यम से अपने पापो की होली कर दी और भवस्थिति संक्षिप्त करदी पर दूसरो की बुराई और निन्दा करने वालों की क्या स्थिति होगी ? यह विचारणीय हे। पतन से उत्थान की ओर,

अंधकार से प्रकाश की ओर कदम बढ़ाने वाली होलिका की स्मृति में मनाये जाने वाला यह होली पर्व हमारे भी पापों का अवसान करने वाला बने।

होली पर्व हमें यह संदेश दे रहा है कि जैसे फाल्गुनी पतझड़ के बाद धरा पर बसंत उतरता है वैसे ही साल भर के पारस्परिक व्यापार-व्यवहार से पीले पड़े अवाछनीय निर्जीव पत्तों को उतार कर फेंक दो और नई उमंगें, नये उत्साह से जीवन-वृक्ष पर नई बहारें ले आओं। आलस्य-प्रमाद, अज्ञानवश आत्महित साधे बिना जीवन के जो अनमोल बसंत बीत गए हैं, वे तो गए, निर्माण की स्वर्णिम घड़ियों की जो बरबादी हो ली, वह तो हो ही ली। अब सजग बन जाओ। जब जागे, तभी सवेरा।” वर्तमान काल बड़ा कीमती है। जीवन का उत्तरार्ध हर दृष्टि से अत्यन्त मूल्यवान होता है। ध्यान रहे, यह शरीर जीर्णता की ओर कदम-दर-कदम बढ़ रहा है, एक दिन निष्क्रिय-निष्प्राण बनकर मिट्टी की परतो में समा ही जाने वाला है। आत्मा अजर-अमर-अविनाशी है, वह न मरता है, न जन्मता है, न शिशु, युवा, वृद्ध होता है। मरण-धर्मा शरीर है, आत्मा नहीं। आत्मा ही मेरा शाश्वत स्वरूप है। उसे उपलब्ध होने, निखारने, परम-पवित्र करने के लिए, मैंने क्या प्रयत्न किया ? सद्गुणों से सुवासित, संयम-सौहार्द्र-समरसता से भावित किया या नहीं ? अज्ञान, आकांक्षा, प्रमादवश जो गलतियां हो-ली, वे तो हो-ली, अब उन्हें परिमार्जित कर नई सृष्टि की अभिनव सर्जना करनी है, नए शुभ संस्कारों का मधुमास लाना है। करना है-समुज्ज्वल भविष्य का निर्माण। यदि यह सकल्प जागता है तो होली पर्व पावन प्रभात ला सकता है।

जैन-धर्म में होली-पर्व, चातुर्मासिक पर्व के रूप में मनाया जाता है। एक वर्ष में तीन चातुर्मासिक पर्व होते हैं—आषाढी पूर्णिमा, कार्तिक पूर्णिमा एवं फाल्गुनी पूर्णिमा। जैन साधक साधना के सोपानों पर चरण बढ़ाकर पूर्णिमा के पूर्णचन्द्र की भांति अपनी साधना की समस्त कलाओं को विकसित करता हुआ सिद्धि की ओर निरन्तर अग्रसर होता रहे, यही इन चातुर्मासिक-पर्वों का पावन-संदेश है।

होली-चातुर्मासिक पर्व पर साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविकाएँ यथाशक्य दया, सवर, उपवास, बेला, तेला, पौषध आदि तपश्चर्या पूर्वक प्रतिक्रमण प्रायश्चित द्वारा आत्मशोधन करते हुए आत्म-शुद्धि हेतु क्षमायाचना करते हैं। चूंकि होली पर्व हमें यही संदेश दे रहा है कि हो ली



कानो मे रग चले जाने पर सुनने की क्षमता पर स्थाई रूप से हानि पहुचती है। आँखो की ऊपरी परत बेहद मुलायम और संवेदनशील होती है, विभिन्न प्रकार के रंग तात्कालिक या स्थाई विकृति पैदा करते है। इनमे मुख्यतः आँखो मे सूजन, कार्निया पर घाव तथा दृष्टि मे धुधलापन या ग्लूकोमा की सभावना अधिक रहती है। फूगो मे रंग भरकर फैकने से कान, आँख, नाक पर चोट आ सकती है। मुँह के द्वारा ये रग पेट मे पहुच कर छाले, अल्सर, गैस्ट्राइटिस आदि तकलीफें उत्पन्न करते है।

होली पर हुलियारो की टोलिया, गली-गली, घर-घर मे मस्ती बिखेरती, रग उड़ाती, चेहरो पर रग मलती हुई नजर आती है किन्तु ध्यान रहे कि उपरोक्त दुष्परिणामो के साथ मुख व शरीर पर लगा रग छुड़ाने के लिए, चमडी को इस तरह रगडा जाता है कि चमडी उधडने लगती है, रग छुड़ाने के चमड़ी पर जलन व दाग पड़ने की आम शिकायतो के साथ रग छुड़ाने मे करोडो लीटर पानी फालतू बहा दिया जाता है। सामान्यत नहाने मे एक दो बाल्टी पानी पर्याप्त होता है। वहीं होली का रग छुड़ाने मे दस-बीस बाल्टी पानी भी कम पड़ता है। भास्कर श्री गगानगर 24-25 मार्च 2002 मे छपे श्री भगवान उपाध्याय के आलेख के अनुसार—“अकेले भोपाल शहर मे होली के दिन लगभग 530 गेलन अतिरिक्त पानी की सप्लाई होती है। रग-पचमी के दिन भी यही स्थिति रहती है। यदि इन दो दिन के अतिरिक्त खर्च होने वाले पानी की बचत कर ली जाय तो इस पानी का उपयोग 50 लाख लोग कर सकते है।” यह तो एक शहर के जल के अपव्यय का हाल है, पूरे हिन्दुस्तान में गँवो-नगरो का लेखा-जोखा किया जाय तो दंग रह जाना पडता है। जल-अपव्यय के साथ शरीर व कपडो के छूटे हुए रग के असर से नदी-नालो-नहरो, तालाबो का पानी रंगीन ही नहीं होता, प्रदूषित भी हो जाता है।

जल, वन की लकडिया व अन्य वस्तुओ के निरर्थक अपव्यय का हिसाब किया जाय तो दिल दहल उठता है। पुतला-दहन का क्या कोई अर्थ है ? बारुद से होने वाली जानमाल की हानि और फैलते प्रदूषण पर कभी सोचने का कष्ट किया जा रहा है क्या ? केवल लोक-प्रवाह मे दह जाना कोई समझदारी नहीं है। व्यक्ति, समाज व राष्ट्र के स्वास्थ्य की दृष्टि से विचार किया जाय तो जल जो जीवन है, उसका अपव्यय और फैलता-प्रदूषण

के पुत्र थे। पिता का नाम भी कितना सार्थक था जो प्रभु को संकेत कर रहा था कि तुम्हें इसी जन्म में सारे कार्य सिद्ध करने हैं अथवा तुम इस जन्म में ही सिद्ध अर्थ वाले होंगे। उनकी माता का नाम त्रिशला था। प्रभु महावीर की माता बनने का गौरव इस महान नारी को मिला था, जो गणतंत्र के प्रमुख वैशाली नरेश चेटक की बहन थी। प्रभु महावीर का जन्म जिस क्षत्रिय कुण्डग्राम में हुआ था। वह ज्ञातवंशीय क्षत्रियों का प्रधान केन्द्र था। एक प्रकार से ज्ञातवंशीय क्षत्रियों की छोटी-सी राजधानी थी और वह वैशाली का ही एक भाग था। जिसके लिए तथागत बुद्ध आख्यायन करते थे कि "स्वर्ग के देव-देवियों को देखना हो तो चले आओ, प्रभु महावीर की जन्म भूमि पर यानि वहाँ के नर-नारियों को देव तुल्य माना जाता था। प्रभु जब माता त्रिशला के गर्भ में थे, तब से ही उनकी दिव्य प्रतिभा की झलक मिलती थी, माता त्रिशला का समय अक्सर ज्ञान-गोष्ठियों में व्यतीत होता था। भगवान् महावीर की जन्मधारी माता त्रिशला से किसी ने निम्न प्रश्न पूछे, जिनके निम्न उत्तर देते हुए उन्होंने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया था। उनसे पूछा गया—"सत् पुरुष कौन होता है ?"

“धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, रूप चार पुरुषार्थों को जो सिद्ध करके निर्वाण पाये, वही सत् पुरुष है।”

और कायर कौन होता है ?

जो मनुष्य जन्म पाकर भी धर्म अर्थ काम, मोक्ष रूप पुरुषार्थों को सिद्ध न कर सके, निर्वाण प्राप्त न कर सके वह कायर पुरुष है।

अच्छा, विद्वान कौन होता है ?

विद्वान वह है, जो शास्त्रों को जानकर पाप में रत नहीं होता, मोह में नहीं फंसता। विषयों से पराजित नहीं होता है वही विद्वान है।

इस प्रकार महिलाओं में श्रेष्ठ विदेहदत्ता प्रियकारिणी त्रिशला माता की विद्वता इन्हीं उत्तरों से झलकती है। मां का पद सदैव महानता का द्योतक होता है। प्रभु महावीर मां के गर्भ में थे, तभी उन्होंने अवधिज्ञान से जाना कि जो माता वदनीय, पूज्यनीय है, उस नारी का उत्पीड़न हो रहा है, अर्द्धवस्त्री कर बाजारों के चौराहों पर बेचा जा रहा है, नारी उत्पीड़न का नहीं, पूजा का स्थान है। तो प्रभु ने एक प्रयोग किया, जिस प्रयोग में प्रभु ने स्वयं का

हिलना डुलना बंद कर दिया, इस विचार से कि "मैं मा के उदर में स्थित स्पंदन-कपन करता हूँ, इससे मेरी मा को कष्ट होता होगा।" पर परिणाम उल्टा हुआ, चाहते थे माता को कष्टमुक्त करना, पर माता का कष्ट बढ़ गया। माता के मन में आशंका उत्पन्न हुई कि क्या गर्भ जीवित है या नहीं ? और यदि जीवित है तो हलन-चलन बढ़ क्यों ? वह एकाएक व्यथित हो उठी। उसने महाराज सिद्धार्थ को इस वृत्त की सूचना दी, वे भी व्यथित हो उठे। जैसे-जैसे वृत्त फैलता गया, वैसे-वैसे व्यथा भी फैलती गई। पूरा राजपरिवार शोकमय हो गया। महावीर प्रभु ने बाहरी घटनाओं को अपने ज्ञान से देखा, वे आश्चर्य-चकित रह गये। उन्होंने सोचा-कभी-कभी अच्छा करना भी बुरा हो जाता है। मैंने माता के सुख के लिए हिलना-डुलना बढ़ किया था, वह दुःख के लिए हो गया। स्वाभाविक को अस्वाभाविक प्रयत्न मान्य नहीं है। प्रभु महावीर ने पुनः हलन-चलन प्रारम्भ कर दी। माता की आशंका दूर हो गई। वातावरण पुनः हर्षमय बन गया। उस समय गर्भस्थ प्रभु ने चिंतन किया—"मेरे स्पन्दन बढ़ कर देने से मा को इतना कष्ट हो सकता है तो यदि मैं माता-पिता की विद्यमानता में समय पथ स्वीकार कर लूंगा तो उन्हें कितना कष्ट होगा। अतः मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि माता-पिता की विद्यमानता में संयम पथ स्वीकार नहीं करूंगा।" यह प्रसंग स्पष्ट करता है कि प्रभु महावीर ने जन्म से पूर्व गर्भकाल में ही अहिंसा/करुणा को आत्मसात कर लिया था। उसका साक्षी आचाराग सूत्र है, वहाँ उल्लेख आया है कि—"जाणित्तु दुक्खं पत्तेयं सायं।" प्रभु ने सम्पूर्ण सृष्टि के दुःख को जाना और उन्हें साता पहुँचे, ऐसा उपाय किया। उसकी शुरुआत की मातृ हृदय से, क्योंकि मातृ हृदय करुणा-संवेदन का स्थान है। एक माता जन्म दाता होती है तो दूसरी जीवनदाता। जीवन दान में छः काया के जीवों का असीम उपकार है। अतः षट्काया के जीवों की रक्षा हेतु प्रभु ने अहिंसा का सूत्र दिया। स्वयं ने अष्ट प्रवचन माता का पालन कर साधक जीवन को अष्ट प्रवचन माता का आराधक बनाया।

महावीर ने जब जन्म लिया, तब माता-पिता ने सोचा—"बालक का नामकरण क्या किया जाय ? नाम यथार्थ होना चाहिए।" उन्होंने निर्णय किया- इस बालक ने जब हमारे कुल में प्रवेश किया है, तब से हम वृद्धते रहे हैं, सब कुछ बढ़ता रहा है, मन की प्रसन्नता भी बढ़ी है। इसलिए बालक का

अक्षय-तृतीया

भारतीय सस्कृति में पर्वों का महत्त्व है। पर्व चाहे लौकिक हो या लोकोत्तर, प्रायः उनके पीछे उनका इतिहास अवश्य होता है। वैदिक संस्कृति में दशहरा, दीपावली, मकर संक्रान्ति आदि मुख्य पर्व हैं। मुस्लिम लोग ईद को महत्त्व देते हैं, ईसाई समाज क्रिसमिस-डे को श्रद्धा की दृष्टि से देखता है। जैन-परम्परा में पर्युषण, सवत्सरी, अक्षय तृतीया इत्यादि को महत्त्व दिया गया है। सभी पर्वों का अपना-अपना महत्त्व है। यह अक्षय तृतीया का पर्व प्रतिवर्ष वैशाख शुक्ला तीज को मनाया जाता है। इस वैशाख शुक्ला तीज को आखातीज अथवा अक्षय-तृतीया क्यों कहा गया है ? इसका सर्वप्रथम कारण तो यह है कि भारतीय ज्योतिष के हिसाब से तिथियाँ चन्द्रमा और नक्षत्रों की गति के अनुसार बनती हैं। इसलिए जैसे चन्द्रमा की कला घटती-बढ़ती रहती है, वैसे तिथियाँ भी घटती बढ़ती रहती हैं। सभी तिथियों में क्षय-वर्धन चलता रहता है किन्तु वैशाख शुक्ला तृतीया एक ऐसी तिथि है, जो कभी भी क्षय नहीं होती है। वर्ष चक्र में यह एक ऐसा दिवस है कि जो अक्षय-दिवस है। इसलिए इस तिथि को अक्षयतिथि कहते हैं। फलतः इसका नामकरण हुआ अक्षय तृतीया।

गणित शास्त्री कहते हैं—गणित में 3 और 9 की संख्या ऐसी है, जो कभी घटती नहीं, कम नहीं होती। जैसे 9 का पहाड़ा जोड़िए, सदैव उसका योगफल 9 ही प्राप्त होगा। 9 एकम् नौ , $9 \times 2 = 18$ इनका योग भी हुआ 9। इसी प्रकार आप जोड़ते जाइये, नौ का अंक कभी क्षीण नहीं होगा। और तीन के अंक की तो इससे भी अधिक विशेषता है। तीन का पहाड़ा लिखकर देखिए। दो बार वह बढ़कर दुगुना, तीन गुना होता है और फिर अपने मूल रूप में रहता है। फिर बढ़ता है, दुगुना, तिगुना होता है और फिर मूल रूप में आ जाता है। किन्तु घटना नहीं है। जैसे $3 \times 2 = 6$, $3 \times 3 = 9$, $3 \times$

भेट सामग्री लेकर उनके दर्शन करने राजमार्ग पर आ गये। परन्तु प्रभु ने किसी की भेट स्वीकार नहीं की और धीर गंभीर गति से आगे से आगे बढ़ते गये। हजारो लोगो की भीड़ प्रभु के पीछे-पीछे चल रही है। कोई भगवान की जय बोल रहे हैं तो कोई चर्चा कर रहे हैं कि अरे ! स्वामी तो कुछ बोलते नहीं, इनको क्या चाहिए ? कोई भेट भी स्वीकार नहीं करते—इस प्रकार चर्चाओ से कोलाहल जैसा शब्द हो रहा था। जनता का कोलाहल सुनकर श्रेयासकुमार ने राजमार्ग पर बढ़ती भीड़ और उनके आगे पधारते हुए ऋषभप्रभु को देखा तो विचार में पड़ गये कि “ये महामानव कौन है ? इस प्रकार के तपस्वी साधक को तो मैंने पहले कहीं देखा है, उनकी स्मृतियाँ अतीत में उतरती गईं, चिन्तन की एकाग्रता बढ़ती गई और मति ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम होने से उन्हें उसी समय जातिस्मरण ज्ञान हो गया, उससे वे अपने पूर्व भवों को देखने लगे, प्रभु ऋषभ के साथ भव-भवान्तर में अपने स्नेह संबंधों का, संयमी जीवनयापन करने का, निर्दोष भिक्षाचर्या, आहार-पानी बहराने की विधि आदि सारी बातें उनके ज्ञान में हस्तामलक की तरह स्पष्ट होने लगी, वे तुरन्त प्रभु ऋषभ के चरणों में पहुँचे और अपने यहाँ भिक्षा ग्रहण करने का निवेदन किया, प्रभु ऋषभ श्रेयासकुमार के साथ उनके रसोड़े में पधारे। श्रेयासकुमार ने असुझता आहार देखकर चहुँ और निगाहे दौड़ाई तो इक्षु रस को प्रासुक देखा और इक्षुरस से प्रभु को करपात्र में पारणा कराया, उसी समय आकाश में देवों द्वारा पाँच दिव्य प्रकट हुए। देवों ने देव-दुदुभि बजाई। अहोदान ! अहोदान ! फिर हर्ष हर्ष कर हर्ष प्रकट किया, उस समय के दिव्य माहौल को लखकर कवि की कलम भी कहीं रुक पाई। कवि के शब्दों में स्वर लहरी परम्परा से आज भी गूंजारित होती है—इक्षुरस का किया पारणा आखा-तीज महान, जय-जय आदिनाथ भगवान-भगवान ॥टेर ॥ आज प्रभु का 13 महीना और 10 दिन की सुदीर्घ अवधि से पारणा हुआ, वैशाख शुक्ला तृतीय का दिवस था, श्रेयासकुमार ने उल्लास एवं हर्षित भावों के साथ त्रयशुद्धि के योगपूर्वक इक्षुरस की अखड धारा से प्रभु को पारणा कराया। इस अक्षय उल्लसित भावना एव अक्षयदान के कारण वैशाख शुक्ला तृतीया अक्षय-तृतीया के रूप में प्रसिद्ध हुई अथवा प्रभु ने प्रथम पारणा में जो ज्ञान, दर्शन, चारित्र की अभिवृद्धि हासिल की, वह एक अतिशय युक्त अभिवृद्धि थी। अतः अखड तत्त्व ज्ञान, दर्शन, चारित्र

की अखंडता की अपेक्षा अक्षय तृतीया की तिथि यथार्थता को चरितार्थ होती है और भी चिन्तन करे तो "दान शील तप और भावना" ये जो मोक्ष प्राप्ति के चार मार्ग कहे गये हैं। उनमें प्रथम मार्ग दान और तृतीय मार्ग तप इन दोनों का अद्भुत अद्वितीय संबंध इस वैशाख शुक्ला तृतीया से जुड़ा हुआ होने के कारण भी यह "तृतीया" संसार में अक्षय, चिर-स्मरणीय बन गई।

सुदीर्घ तप का पारणा और शुद्ध सुपात्रदान। पारणे का संबंध एक ओर तप से जुड़ता है तो दूसरी ओर दान से। क्योंकि तप होगा तभी पारणा होगा और कोई दाता मिलेगा, शुद्ध भिक्षा दान करेगा, तभी पारणा होगा। तो पारणे का संबंध तप से भी है और दान से भी। तप और दान की दिव्य महिमा से आज का दिन पावन हुआ इस कारण अक्षय पुण्य दिवस के रूप में इस दिवस की महिमा गाई जाने लगी। तथा तप और दान की आराधना करने की प्रेरणा देने के कारण भी यह तृतीय अक्षय तृतीया बन गई। चूँकि सम्यक् तप और सुपात्रदान अक्षय-पद प्राप्ति के हेतु हैं। दूसरी बात यह भी है कि श्रमणों को भिक्षा देने की विधि का प्रथम ज्ञान देने वाले एवं सुपात्रदान के प्रथम प्रवर्तक श्रेयास कुमार का उपकार भी चिर स्मरणीय होने से आज का दिवस "अक्षय" बन गया है।

प्रश्न : भगवान् ने चैत्र कृष्णा अष्टमी को चौविहार बेले से दीक्षा ग्रहण की और 1 संवत्सर तक भगवान् को निर्दोष भिक्षा प्राप्त नहीं हुई थी, 1 संवत्सर बाद भिक्षा प्राप्त होने का उल्लेख समवयांग सूत्र में आता है— "संवच्छरेण भिक्षा लब्धा उसहेण लोग-नाहेण।" अर्थात् लोकनाथ ऋषभदेव ने एक संवत्सर के पश्चात् भिक्षा प्राप्त की। अतः प्रश्न होता है कि— "वैशाख शुक्ला तृतीया को पारणा हुआ, यह कैसे माना जाय?"

समाधान : प्रभु का पारणा वैशाख शुक्ला तृतीया को होने से 13 मास और 10 दिन का तप होता है, पर व्यवहार नय की दृष्टि से ऊपर के दिनों को गौण मानकर इसे वर्षीतप कहा गया है। जिस प्रकार पांच माह का चातुर्मास होने पर भी व्यवहार में उसे चातुर्मास ही कहा जाता है, पंचमास नहीं। उसी प्रकार व्यवहार नय से प्रभु का पारणा भी एक संवत्सर से वैशाख शुक्ला तृतीया का होना आगम सम्मत है।

आगमों में प्रायः संक्षेप शैली से वर्णन किया जाता है। किसी समय या काल आदि को बताने के लिए बड़े रूप में वर्ष, युग, पल्योपम आदि की

गिनती की जाती है, मास, पक्ष, दिन आदि को उसी में समाविष्ट कर दिया जाता है। यह आगमों की वर्णन शैली है।

उदाहरणार्थ-स्थानांगसूत्र के नवम् स्थान में उल्लेख है—

“उसंभेणं अरहया कोसिलिएणं इमीसे ओसप्पिणीए णवहिं सागरोवमकोडाकोडीहि विङ्कंतेहिं तित्थं पवत्तिए।” अर्थात् कौशलिक अरिहंत ऋषभदेव ने अवसर्पिणी काल को नौ कोटाकोटा सागरोपम काल व्यतीत होने पर तीर्थ का प्रवर्तन किया।

किंतु आगमों के विस्तृत वर्णन के अनुसार अवसर्पिणी काल के नौ कोटाकोटी सागरोपम व्यतीत होने में एक हजार वर्ष कम एक लाख पूर्व 3 वर्ष 8½ मास का सुदीर्घ समय बाकी था, तब भगवान् ने धर्मतीर्थ का प्रवर्तन किया।

आचाराग सूत्र की संक्षेप शैली में कहा गया है— “वारस वासाइं वोसड्डुकाए” अर्थात् 12 वर्ष तक भगवान् महावीर छद्मस्थ काल में रहे।

जबकि स्थानांगसूत्र स्थान 9 में उल्लेख है कि—“भगवान् महावीर 12 वर्ष और 13 पक्ष तक छद्मस्थ रहे।” यह विस्तार शैली में वर्णन है। इसी प्रकार भगवान् महावीर का तीर्थकरकाल 30 वर्ष बताया जाता है जबकि काल गणना करने पर 42 वर्ष के समय जीवन में से 12 वर्ष 13 पक्ष छद्मस्थ काल के निकालने पर तीर्थकर काल केवल 29 वर्ष 5 मास 15 दिन का ही होता है। तो इस प्रकार आगमों की प्रतिपादन शैली पर ध्यान देने से इस प्रश्न का समाधान मिलता है। आगमों में संक्षेप में वर्णन करने की शैली है। विस्तार से जहां वर्णन होता है, वहाँ छोटी-छोटी बातों का उल्लेख हो जाता है, किंतु संक्षेप में जहाँ वर्णन होता है, वहाँ मोटे रूप में ही कथन किया जाता है।

प्रश्न वर्षीतप तो वर्ष भर करने से होता है, एकान्तर-तप करते हुए दो वर्ष बाद आने वाली वैशाख शुक्ला तृतीया को एकान्तर तप पूर्ण करने को वर्षी-तप कहा जा सकता है। जैसे अन्तगढ सूत्र में तपस्या के रत्नादली कनकावली आदि सज्ञावाचक नाम आते हैं वैसे यह वर्षीतप भी सज्ञावाचक नाम है। यदि कहो कि—“ऐसे वर्षीतप का आगम में कहीं उल्लेख नहीं है, अतः जो तप आगम में उल्लेखित है, उसे मान्य किया जा सकता है।” तो इसका समाधान है—ऐसे अनेक उदाहरण हैं, जिनका आगम में कोई उल्लेख

